उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

MAJY-603

तृतीय सेमेस्टर

ज्योतिष प्रबोध-01

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

अध्ययन समिति - फरवरी 2020

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल – (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी – (समन्वयक)
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ. श्याम देव मिश्र प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर	**2**	**1, 2, 3, 4, 5**

प्रकाशन वर्ष - 2021

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: -

ISBN NO. -

एम.ए. (ज्योतिष) **तृतीय सेमेस्टर** **MAJY-203**

ज्योतिष प्रबोध

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – दिगयनांशपलभादि साधन	**पृष्ठ-2**
इकाई 1: दिक् साधन	3-17
इकाई 2: अयनांश विमर्श	18-32
इकाई 3: पलभा एवं चरखण्डानयन	33-48
इकाई 4: लग्नानयन	49-59
इकाई 5: अक्षक्षेत्र परिचय	60-72
द्वितीय खण्ड – प्रमुख ज्योतिर्विदों का जीवन परिचय	**पृष्ठ-73**
इकाई 1: आचार्य लगध, आर्यभट्ट एवं वराहमिहिर	74-100
इकाई 2: लल्ल, ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर एवं श्रीपति	101-124
इकाई 3: भास्कराचार्य, मकरन्दाचार्य, केशवाचार्य एवं गणेश दैवज्ञ	125-148
इकाई 4: कमलाकर भट्ट, बापूदेव शास्त्री एवं सुधाकर द्विवेदी	149-167
इकाई 5: नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, मुरलीधर ठाकुर एवं गंगाधर मिश्र	168-187

एम.ए. (ज्योतिष)

(MAJY-20)

तृतीय सेमेस्टर

तृतीय पत्र

ज्योतिष प्रबोध - 01

MAJY-603

इकाई - १ दिक् साधन

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना

१.२ उद्देश्य

१.३ दिक् परिचय

१.४ दिक् ज्ञान विधि – सिद्धान्त ग्रन्थों पर आधारित

१.४.१ दिक् साधन- सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि एवं सिद्धान्ततत्वविवेक ग्रन्थानुसार

१.५ सारांश

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम.ए. ज्योतिष पाठ्यक्रम के तृतीय सेमेस्टर (MAJY-603) के प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – दिक् साधन। इसके पूर्व में आपने गणित एवं फलित से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया होगा। आप इस इकाई में गणित ज्योतिष से ही जुड़े '**दिक् साधन**' का अध्ययन करने जा रहे है।

ज्योतिष शास्त्र के किसी भी स्कन्ध के मुख्य रूप रूप से तीन आधार स्तम्भ है – दिक्, देश एवं काल। इन्हीं तीनों के आधार पर ज्योतिषीय गणित, फलित एवं संहिता आदि स्कन्ध अपना-अपना कार्य करती है। अत: उनमें यहाँ दिक् साधन से सम्बन्धित विषयों को आपके ज्ञानार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

आइए इस इकाई में आप सभी के लिए दिक् साधन के गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक पक्ष का विश्लेषण करते हैं।

१.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- दिक् किसे कहते है।
- दिक् का साधन कैसे किया जाता है।
- दिक् का गणितीय एवं सैद्धान्तिक पक्ष क्या है।
- विभिन्न ग्रन्थों में दिक् साधन का स्वरूप क्या है।
- दिक् का क्या महत्व है।

१.३ दिक् परिचय

दिक् साधन ज्योतिषशास्त्र के मूलाधार पक्षों में से एक है। ऋषियों ने किसी भी वस्तु के परिज्ञान के लिए दिक् साधन की व्यवस्था प्रतिपादित किया है। ज्योतिष में प्रयोग के तीन पक्ष है- दिक्- देश एवं काल। इनके ज्ञानाभाव में ज्योतिषशास्त्र द्वारा सम्यक् रूप से किसी भी तथ्य को जान पाना सर्वथा दुष्कर है। ज्योतिष के त्रिप्रश्नों (दिक् देश एवं काल) में से एक है- दिक्। सामान्यतया

दिक् शब्द का अर्थ होता है- दिशा। दिग् व्यवस्था द्वारा ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत एवं इस पृथ्वी पर किसी की स्थिति का निर्धारण किया जा सकता है। क्योंकि इस अनन्त ब्रह्माण्ड में एवं विशाल भूपिण्ड पर किसी भी वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ या पिण्ड को देखने के लिए शून्य में अपने आप को कहाँ स्थापित कर, स्वयं के सापेक्ष उसे कहां ढूंढ़ा जाय? इसके लिए दिग् व्यवस्था ही एक मात्र आश्रय है। सामान्यतया दिक् या दिशा के बारे में आम लोग केवल इतना जानते हैं कि दिशायें केवल चार होती है- पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण, परन्तु ऐसा नहीं है।

ज्योतिष शास्त्र में दिशाओं की संख्या १० कही गयी है। पूर्व, अग्नि कोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य कोण, पश्चिम, वायव्य कोण, उत्तर, ऐशान्य कोण, उर्ध्व एवं अध: दिशा। इनमें प्रधान पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण चार दिशा, चार कोण एवं उर्ध्व तथा अध: दिशाओं को विदिशा के नाम से भी जाना जाता है।

विदिशा निर्णय –

आग्नेयी पूर्वदिग्ज्ञेया दक्षिणादिक् च नैर्ऋती।
वायवी पश्चिम दिक् स्यादैशानी च तथोत्तरा।।

अर्थात् अग्निकोण की गणना पूर्वदिशा में, वायव्य कोण की पश्चिम दिशा में, नैर्ऋत्य कोण की दक्षिण दिशा में तथा ईशान कोण की गणना उत्तर दिशा में जानना चाहिए।

दिशा विचार –

यत्रोदेत्यस्ततां गच्छेदर्कस्ते पूर्वपश्चिमे।
ध्रुवो यत्रोत्तरादिक् सा तद्विरूद्धा च दक्षिणा।।

अर्थात् जिस दिशा में सूर्य का उदय होता है, वह पूर्व दिशा है, जिस दिशा में सूर्य अस्त होता है, उसे पश्चिम दिशा कहते है। जिस दिशा में ध्रुव तारा दिखलाई दें उसे उत्तर दिशा और उससे विरूद्ध भाग में दक्षिण दिशा समझना चाहिए।

स्पष्टदिक् साधन –

सायानार्काजसंक्रान्तौ काले सूर्योदये नरैः।
भास्कराभिमुखैर्ज्ञेया दिशोऽथ विदिश: स्फुटा:।।
संमुखे पूर्वदिग् ज्ञेया पश्चाद् ज्ञेया च पश्चिमा।
उत्तरा वामभागे या दक्षिणे सा च दक्षिणा।।

सायन मेष के संक्रान्ति में सूर्योदय काल में सूर्याभिमुख होकर स्पष्ट दिशा और विदिशाओं का ज्ञान करना चाहिए। सम्मुख जो दिखे वह पूर्व, पीछे पश्चिम, बायें उत्तर और दाहिनें भाग की दक्षिण दिशा होती है।

प्रधानतया आठ दिशाओं के स्वामी इस प्रकार कहे गये हैं-

प्राच्यादिशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतय:।
क्षीणेन्द्वर्कयमारा: पापास्तै: संयुत: सौम्य:।।

पूर्वादि आठ दिशाओं के स्वामी क्रमश: सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरु होते हैं।

स्पष्टार्थ चक्र -

दिशा	पूर्व	अग्निकोण	दक्षिण	नैर्ऋत्य कोण	पश्चिम	वायव्यकोण	उत्तर	ईशान कोण
स्वामी	सूर्य	शुक्र	मंगल	राहु	शनि	चन्द्र	बुध	गुरु

१.४ दिक् ज्ञान विधि- सिद्धान्त ग्रन्थों पर आधारित

अब तक आपने पढ़ा कि दिशाएँ पूर्वादि भेद से दश प्रकार की होती हैं। जिनका उपयोग किसी भी एक स्थान से दूसरे स्थान का निर्धारण करने में किया जाता है। वर्त्तमान समाज वैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टि से अति उन्नत हो गया है अतः आजकल सभी लोग कम्पास नामक या अन्य किसी आधुनिक यन्त्र से पूर्वादि दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं, परन्तु पुरातन काल में जब विज्ञान इतना उन्नत नहीं था तथा इससे सम्बन्धित सुविधाएँ सबके लिए सुलभ नहीं थी तब भी हमारे ऋषि-महर्षि एवं आचार्यगण ग्रह-नक्षत्रादि के वेध के द्वारा अथवा सूर्य की छाया के द्वारा पूर्वादि दिशाओं का ज्ञान करते थे। अतः हमारे प्राचीन शास्त्रों में दिग् ज्ञान की जो विधियाँ महत्त्वपूर्ण बतलायी गई हैं उनका हम उपस्थापन यहाँ कर रहे हैं-

विदित हो कि दिग्ज्ञान की दो विधियाँ शास्त्रों में वर्णित हैं, जिसमें प्रथम स्थूल दिग्ज्ञान विधि है जिसके द्वारा सामान्य कार्य व्यवहार हेतु सरल विधियों से दिग्ज्ञान किया जाता है तथा द्वितीय दिग्ज्ञान की विधि सूक्ष्म होती है जिसमें श्रमपूर्वक गणित व्यवहार एवं सूक्ष्म कार्यों के सम्पादन हेतु सूक्ष्म दिग्ज्ञान होता है। आचार्यों नें सिद्धान्त ग्रन्थों में स्थूल एवं गणितीय प्रयोग हेतु सूक्ष्म दिग्ज्ञान विधि का विचार पूर्वक प्रतिपादन किया है।

स्थूल दिक् साधन-

यत्रोदितोऽर्कः किल तत्र पूर्वा तत्रापरा यत्र गतः प्रतिष्ठाम्।
तन्मत्स्यतोऽन्ये च ततोऽखिलानामुदकस्थितो मेरुरितिप्रसिद्धम्।।

भास्कराचार्य के इस वचन के अनुसार सभी स्थानों पर जिस दिशा में सूर्य का उदय होता है वह उस स्थान की पूर्व दिशा तथा जिस दिशा में सूर्य का अस्त होता है वह पश्चिम दिशा होती है। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम दिशा का सूर्योदय एवं सूर्यास्त देखकर निर्धारण करने के बाद पुनः पूर्व और पश्चिम बिन्दुओं की सहायता से पूर्वाभिमुख खड़े होकर वाम भाग द्वारा उत्तर और दक्षिण भाग द्वारा दक्षिण दिशा का निर्धारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त भी आचार्य ने लिखा है कि समग्र भूमण्डल पर स्थित व्यक्तियों के लिए सुमेरु उत्तर दिशा में होता है। अतः सुमेरु से १८०० दूसरी तरफ दक्षिण दिशा सिद्ध होगी। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में सूर्योदय तथा सूर्यास्त के द्वारा दिग्साधन करने से व्यवहारिक उपयोग में भी अनुभव हीनता से अनेक समस्याएं दिग् निर्धारण में उपस्थित हो जाती हैं क्यों कि सूर्य के विषुवत् रेखा से २३०। २७' (परम क्रान्ति तुल्य) उत्तर से लेकर विषुवत् रेखा से २३०। २७' दक्षिण तक भ्रमण करने के कारण ४६०। ५४' के बीच में हर स्थान पर सूर्योदय एवं सूर्यास्त का स्थान क्रमशः रोज बदलता रहेगा जिससे एक जगह पर भी प्रतिदिन पूर्वादि दिशाएं भिन्न-भिन्न होती रहेंगी। अतः ४६०। ५४' के मध्य किस बिन्दु के सूर्योदय को पूर्व बिन्दु मानकर किसी कार्य व्यापार का सम्पादन किया जाय एतदर्थ आचार्यों ने सूक्ष्म दिग्ज्ञान की व्यवस्थाएं दी हैं क्यों कि यागादि कर्म में स्वल्प दिग्दोष उपस्थित होने पर भी उनके फल नहीं मिलते है। अतः आचार्यों नें इस प्रपंच से मुक्ति के लिए सूक्ष्म प्रकार से दिग् साधन की अनेक विधियाँ ग्रन्थों में दी हैं जिनमें से कुछ विधियों का उपस्थापन यहाँ करेंगे।

बोध प्रश्न - 1

(1) दिक् का पर्याय है?

(क) दिशा (ख) यज्ञ

(ग) काल (घ) यात्रा

(2) दिशाएँ कितनी होती हैं?

(क) ४ (ख) ८ (ग) १० (घ) १२

(3) निम्नलिखित में विदिशा कौन है।

(क) पूर्व (ख) पश्चिम (ग) अग्निकोण (घ) दक्षिण

(4) स्थूल विधि में सूर्यास्त द्वारा किस दिशा का ज्ञान होता है?

(क) पूर्व (ख) पश्चिम (ग) उत्तर (घ) दक्षिण

(5) दिक् ज्ञान की कितनी विधि शास्त्रों में वर्णित है।

(क) २ (ख) ३ (ग) ४ (घ) ५

१.४.१ दिक् साधन – सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि एवं सिद्धान्ततत्वविवेक ग्रन्थानुसार -

'सूर्यसिद्धान्त' नामक ग्रन्थ में कथित दिक् साधन-

शिलातलेऽम्बु संशुद्धे वज्र लेपेऽपिवा समे।
तत्र शंक्वंगुलैरिष्टै: समं मण्डलमालिखेत्।।
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्वादशांगुलम्।
तच्छाया स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयो:।।
तत्र बिन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिनारेखाकर्तव्यादक्षिणोत्तरा।।
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यत्स्यै: संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि।।

अर्थात् जल से जल की सतह के समान समतल की गई भूमि पर, शिलाखण्ड पर, चूने का सीमेन्ट से कठोर की गई समतल भूमि पर, जिसकी सतह कॉच की सतह की तहर हों, ऐसे धरातल को दिशा ज्ञान के उपयुक्त माना जाता हैं। इस धरातल पर मध्याह्न की छाया अर्थात् पलभा से अधिक अंगुलों के शंकु (१२ अंगुल) से समवृत्त की रचना करना चाहिए। उस वृत्त के केन्द्र में १२ अंगुल का एक शंकु स्थापित करें। उस शंकु की छाया का अग्र भाग जहाँ पर पूर्वार्ध एवं अपरार्ध दिन के भाग में उस वृत्त का स्पर्श करें अर्थात् जहाँ पर पूर्व भाग में स्पर्श करें वहाँ पूर्व बिन्दु एवं पश्चिम में जहाँ स्पर्श करें वहाँ पश्चिम बिन्दु लिखें। दोनों बिन्दुओं से मत्स्याकार वृत्त बनावें एवं मछली के आकार के दोनों वृत्तों की मिलने की आकृति वाले मुख एवं पूंछ के बीच में खींची जाने वाली रेखा याम्योत्तर रेखा होगी जो पूर्वापर दोनों बिन्दुओं के बीच जाने वाली रेखा पर लम्ब के रूप में होंगी। याम्योत्तर रेखा जहाँ समवृत्त के दोनों ओर बिन्दुओं पर लगती है वहाँ वास्तविक उत्तर एवं दक्षिण दिशा होगी। पुन: याम्योत्तर रेखा के सूत्रार्ध से मत्स्याकार रेखा बनावें ये जहाँ समवृत्त पर पूर्व एवं पश्चिम में स्पर्श करेगी वहीं वास्तविक पूर्व एवं पश्चिम बिन्दु होंगे। वहीं वास्तव में पूर्व एवं पश्चिम दिशा होगी। इसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण दिशा का साधन करने के पश्चात् उस दिशा में अग्निकोणादि का भी साधन करना चाहिए।

स्थूल एवं सूक्ष्म भेद से दिशा दो प्रकार की होती है, यह पूर्व में आपको बताया जा चुका है। जहाँ सूर्योदय होता है वहाँ पूर्व एंव जहाँ सूर्यास्त होता है वहाँ पश्चिम दिशा स्थूल रूप से होती है। यह स्थूल दिशा यात्रादि में ग्रहण करते हैं। सूर्य की क्रान्ति प्रत्येक दिन अलग-अलग होने से सूर्योदय एवं सूर्यास्त के बिन्दु स्थूल रूप से पूर्व एवं पश्चिम बिन्दु होते हैं। लेकिन श्रौत-स्मार्त -यज्ञ के कुण्ड, मण्डप, गृह आदि निर्माण में सूक्ष्म दिशा की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म दिशा जानने के लिए सबसे पहले जिस प्रकार से भी हो पृथ्वी को समतल करनी चाहिए। समधरातल पर जिस प्रकार से भी मध्याह्न काल के १२ अंगुल के शंकु की छाया वृत्त के अन्दर ही रहे उतने ही अंगुल के शंकु से एक दिशा जानने लायक वृत्त बनाना ठीक है क्योंकि यदि मध्याह्न काल की छाया से कम अंगुल का शंकु होगा तो उस शंकु का छयाग्र बिन्दु वृत्त से बाहर ही होगा ऐसी स्थिति में छायाग्र दोनों बिंदुओं पर जाने वाले सूत्र के बाहर जाने से दिशा ज्ञान सही नहीं हो पायेगा। इसलिए वास्तविक दिशा जानने के लिए मध्याह्न काल की छाया से अधिक अंगुलों को त्रिज्या मान कर वृत्त खीचना ठीक है जिससे कि छायाग्रगत दोनों बिन्दु वृत्त के अन्दर ही होंगे।

एक दिन सूर्य की क्रान्ति परमाल्प होने के कारण शून्य हो तो उस दिन सूर्य का भ्रमण एक ही अहोरात्र वृत्त में ही होगा क्योंकि तब क्रान्ति वृत्त ही अहोरात्र वृत्त भी होता है।शंकु की छाया सूर्य से विपरीत दिशा में गमन करने के कारण जब सूर्य पूर्व कपाल में होगा तो ९० अंश नतांश होने के कारण शंकु की छायाग्रभाग पश्चिम दिशा से वृत्त में प्रवेश करेगा एवं जब सूर्य पर कपाल में होगा तो ९० अंश नतांश के समय ही छायाग्र भाग पूर्व दिशा में वृत्त से बाहर निकलेगा। उस समय पूर्व एवं पर दोनों ही कपालों में ९० अंश नतांश समान होने से छायाग्र पर्वा पर सूत्रान्तर के रूप में ज्या रूपी दोनों भुज भी समान होंगें। उस छायाग्र प्रवेश बिन्दु एवं निर्गम दानों बिन्दुओं में जाने वाली रेखा उस वृत्त की पूर्णज्या के रूप मे होती है, वह क्षितिज वृत्त के केन्द्रगत वास्तव पूर्वापर रेखा के समानान्तर पूर्वापर रेखा के रूप में होगी। जिससे उस वृत्त में गये हुए दोनों छायाग्र गत बिन्दु भी पूर्वा पर बिन्दु होते हैं। उन दोनों पूर्वापर बिन्दु होते हैं।

उन दोनों पूर्वापर वृत्त को केन्द्र मानकर बनाये गये दोनों वृत्त जहाँ मिलते हैं उन योग के दोनों स्थानों पर मत्स्य का आकार बन जाता है। उस वृत्तों का एक दिशा की ओर के योग स्थान को मछली का मुँह एवं दूसरे स्थान को पूँछ समझे। इस मुख एवं पुच्छ के बीच जाने वाली रेख कल्पित रेखा पर लम्ब रूपा एवं उस रेखा का आधा करने वाली एवं वृत्त के केन्द्र में होकर जाने वाली रेखागणित के नियमानुसार होती है, वही रेखा वास्तव में दक्षिणोत्तर रेखा होगी एवं उस वृत्त एवं याम्योत्तर रेखा के

दोनों के योग बिन्दु ही दक्षिणोत्तर दोनों बिन्दु होंगें। दक्षिणोत्तर दोनों बिन्दुओं के बीच जाने वाली रेखा के आधे को त्रिज्या मानकर बनाये गये दोनों वृत्तों का जहाँ मत्स्याकार रूप बनें उसके मुख एवं पुच्छ में जाने वाली जो रेखा उस वृत्त के केन्द्र में होकर भी जावे वास्तव में पूर्वापरा रेखा होगी एवंउस पूर्वापरा रेखा का उन दोनों बिन्दुओं से योग का स्थान ही वास्तविक रूप से पूर्वापर बिन्दु होते हैं।

इस तरह से पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण चारों सूक्ष्म दिशायें ज्ञात हो जाती है। इसी तरह से हम पूर्वोत्तर दोनों बिन्दुओं की सहायता से मत्स्याकार आकृतियाँ बनाकर अग्नि-नैर्ऋत्य-वायव्य-ईशान उपदिशाओं का ज्ञान भी कर सकते सकते है। यह सब नीचे क्षेत्र में स्पष्ट है -

अब यहाँ भास्कराचार्य द्वारा 'सिद्धान्तशिरोमणि' ग्रन्थ में कथित दिक् साधन को समझते है -
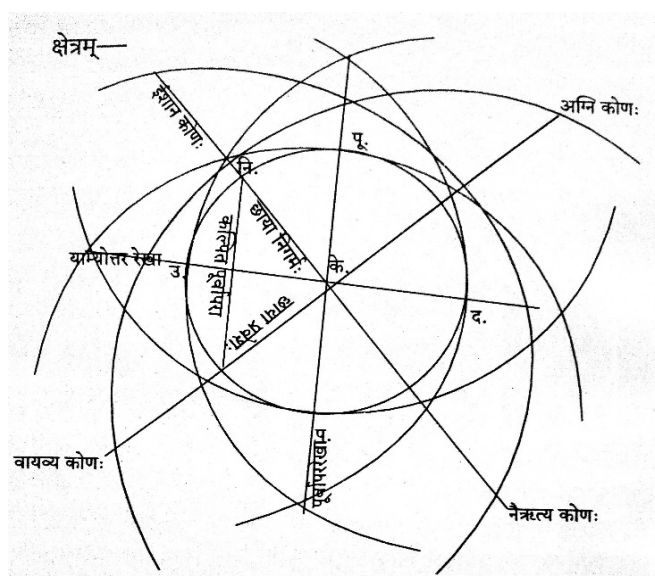
वृत्तेऽम्भः सुसमीकृते क्षितिगते केन्द्रस्थशंकोः क्रमात्
भाग्रं यत्र विशत्युपैति च यत्रस्तत्रापरेन्द्र्यौ दिशौ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहता-
ल्लम्बज्याप्तमितांगुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता।।

अर्थात् पूर्वोक्त जल सम्प्रसारण विधि से भूमि का समतलत्व परीक्षण कर उस समतल भूमि पर इष्ट व्यासार्द्ध द्वारा एक वृत्त का निर्माण कर उस वृत्त के केन्द्र में एक द्वादशांगुल शंकु की स्थापना करेंगे और छाया का परीक्षण करेंगे। पुनः पहले बताए हुए नियमानुसार ही शंकु की छाया सूर्योदय एवं सूर्यास्त के आसन्न काल में दिग्ज्ञानार्थ निर्मित वृत्त में जहाँ प्रवेश करेगी तथा जहां से निर्गम होगी

वहाँ चिह्न लगाकर पुनः छाया प्रवेश तथा निर्गम कालिक भुजाग्रों का अन्तर ज्ञात कर छाया निर्गम बिन्दु पर सूर्य के अयन दिशा में संस्कार करने से जो बिन्दु प्राप्त होगी उस बिन्दु पर तथा उसके विरुद्ध दिशा में स्थित छाया प्रवेश बिन्दु पर गई हुई रेखा का निर्माण करने से यह रेखा पूर्वापर रेखा के समानान्तर रेखा बनेगी।
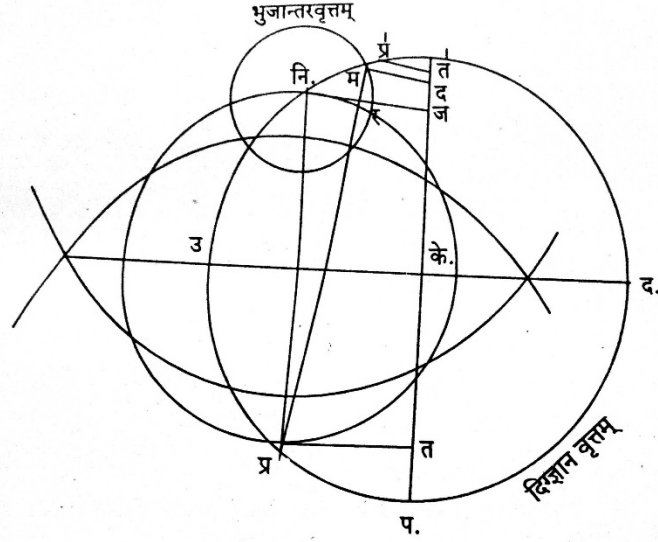
संस्कार हेतु सूर्य यदि कर्कादि छः राशियों में हो तो दक्षिणायन एवं मकरादि छः राशियों में हो तो उत्तरायण सूर्य होता है। अतः उत्तरायण होने पर पूर्व बिन्दु से उत्तर में तथा दक्षिणायन होने पर दक्षिण में फल का संस्कार कर स्पष्ट पूर्व दिशा का ज्ञान होगा। दोनों भुजाग्रों का अन्तर ज्ञात करने के लिए आचार्यों नें निम्नलिखित विधि का निर्देश किया है। इस क्रम में दिग्ज्ञानार्थ निर्मित वृत्त में छाया प्रवेश तथा निर्गम काल का ज्ञान कर उन दोनों समयों की स्पष्ट सूर्य क्रान्ति का साधन करेंगे तथा पुनः उनकी ज्या बनाकर इन दोनों क्रान्तिज्याओं के अन्तर को छायाकर्ण से गुणाकर लम्बज्या से भाग देगें, इस गणित प्रक्रिया से जो फल प्राप्त होगा वही प्रवेश एवं निर्गमकालिक भुजाग्रों का अन्तर होगा। अतः इस अन्तर फल का सूर्य की अयन दिशा में उत्तर या दक्षिण में पूर्व बिन्दु पर संस्कार करने से शुद्ध पूर्व बिन्दु प्राप्त होगा। प्रस्तुत प्रसंग में वर्णित अक्षज्या, लम्बज्या, पलकर्ण का ज्ञान आप ''गोल परिभाषा'' या ''सूर्यसिद्धान्त'' आदि सिद्धान्त ग्रन्थों की सहायता से प्राप्त करेंगे। उपर्युक्त गणित की उपपत्ति अक्षक्षेत्र के द्वारा सिद्ध होती है। क्यों कि ''भुजोऽक्षभा कोटिरिनांगुलोना कर्णोऽक्षकर्णः खलु मूलमेतत्'' इत्यादि के द्वारा भास्कराचार्य नें जिन आठ अक्षक्षेत्रों का वर्णन किया है उनमें लम्बज्या कोटि, अक्षज्या भुज तथा त्रिज्या कर्ण द्वारा निर्मित त्रिभुज तथा क्रान्तिज्या कोटि, कुज्या भुज एवं

अग्रा कर्ण द्वारा निर्मित त्रिभुज के सजातीय होने से परस्पर समानता के कारण अनुपात सिद्ध होता है कि यदि प्रथम त्रिभुज के लम्बज्या कोटि में त्रिज्या कर्ण प्राप्त होता है तो द्वितीय त्रिभुज के अन्तर्गत क्रान्तिज्या कोटि में क्या प्राप्त होगा? तो इसमें अग्रा कर्ण प्राप्त होता है-

$$\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{अग्रा।}$$

सैद्धान्तिक नियमानुसार गोलपृष्ठ पर निर्मित पूर्वापर वृत्त तथा अहोरात्र वृत्तों के मध्य क्षितिज वृत्त में अग्रा होती है। ''पूर्वापरद्युरात्रान्तः क्षिजितेऽग्रांशकास्तथा'' तथा ग्रह स्थान से अपने क्षितिज वृत्त के धरातल पर किया गया जो लम्ब है उसे इष्ट शंकु कहते है। इष्ट शंकु के मूल से पूर्वापर सूत्र का अन्तर भुज के तुल्य तथा अपने उदयास्त सूत्र का अन्तर शंकुतल होता है। पुनः इस भुज और शंकुतल के स्थितिवश योग या अन्तर रूप संस्कार से पूर्वापर सूत्र तथा उदयास्त सूत्र के मध्य अग्रा की प्राप्ति होती है। अतः अग्रा ± शंकुतल = भुज।
यहाँ पूर्व में आगत अग्रा का मान इस अग्रा के स्थान पर रखने से –

$$\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}} \pm \text{शंकुतल} = \text{भुज।}$$

हम सभी जानते हैं कि गोलपृष्ठ पर अनेक वृत्त बनते हैं जिनमें से यह भुज त्रिज्या वृत्तीय सिद्ध होता है। अतः दिग् साधन के लिए इस त्रिज्या वृत्तीय भुज को छायाकर्ण वृत्त में परिवर्तित करते हैं तब यह भुज कर्ण वृत्तीय होता है।

$$\therefore \text{भुज} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रान्तिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या} \times \text{लम्बज्या}} \pm \frac{\text{शंकुतल} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \text{भुज} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{लम्बज्या}} \pm \frac{\text{शंकुतल} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

($\because$ कर्णवृत्त में $\frac{\text{शंकुतल} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$ का मान पलभा के तुल्य होता है।)

$$\therefore \text{भुज} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{लम्बज्या}} \pm \text{पलभा।}$$

इस गणितीय विधि से हम दिग् साधन हेतु निर्मित वृत्त में छाया प्रवेश तथा छाया निर्गम काल के भुजों का साधन करेंगे तथा फिर उन दोनों भुजाओं का अन्तर साधित कर अग्रिम क्रम में प्रवृत्त होंगे–

$$\left(\frac{\text{छाया प्रवेश कालिक क्रान्तिज्या} \times \text{छाया प्रवेश कालिक छायाकर्ण}}{\text{लम्बज्या}} \pm \text{पलभा}\right) - \left(\frac{\text{छाया निर्गम कालिक क्रान्तिज्या} \times \text{छाया निर्गम कालिक छायाकर्ण}}{\text{लम्बज्या}} \pm \text{पलभा}\right)$$

$$= \frac{(\text{छाया प्रवेश कालिक क्रान्तिज्या} - \text{छाया निर्गम कालिक क्रान्तिज्या}) \times \text{छायाकर्ण}}{\text{लम्बज्या}}$$

= प्रवेशकालिक तथा निर्गम कालिक भुजों का अंगुलात्मक अन्तर।

इस प्रकार प्रवेश एवं निर्गम कालिक भुजों का अन्तर प्राप्त कर दिग्ज्ञानार्थ निर्मित वृत्त परिधि के पूर्व बिन्दु पर सूर्य की अयन दिशा में इस अंगुलात्मक अन्तर को जोड़ने या घटाने से वास्तविक पूर्व दिशा सिद्ध होती है। अब इस पूर्व बिन्दु से पश्चिम बिन्दु तक रेखा बनाकर पूर्वापर के समानान्तर रेखा सिद्ध होती है। परन्तु पूर्वोक्त ''वृत्तेऽम्भः सुसमीकृते क्षितिगते ....'' इत्यादि श्लोक की सहायता से भास्करादि आचार्यों के द्वारा साधित दिग्ज्ञान भी पूर्णतया शुद्ध एवं सूक्ष्म नहीं होगा, क्यों कि उपर्युक्त नियमानुसार अंगुलात्मक भुजान्तर का दिग्ज्ञापक भूपरिधि में संस्कार करने से भी स्वल्पान्तर दोष उत्पन्न होगा क्यों कि छाया प्रवेशकालिक एवं निर्गमकालिक भुजान्तर का मान अंगुलात्मक एवं ज्यारूप में प्राप्त होगा परन्तु वृत्त की परिधि चापात्मक होती है। अतः ज्या और चाप के मध्य अन्तर होने के कारण यह संस्कार भी असमान जाति का होने से स्थूल होगा।

आचार्य कमलाकर भट्ट द्वारा 'सिद्धान्ततत्वविवेक' नामक ग्रन्थ में कथित सूक्ष्म दिग्ज्ञान –

अथात्र वृत्तं समभूमिपृष्ठे कार्यं च तच्चक्रकलाङ्कितं च।
तत्केन्द्रगाल्लम्बनिभार्कशंकोश्छायाग्रकं यत्र विशत्युपैति।।
वृत्ते परेन्द्र्यौ भवतौ दिशौ च तत्कालदृग्ज्याग्रगतौ भुजौ यौ।
छायोत्थकर्णेन गुणौ विभक्तौ छायाप्रमाणेन तयोस्तु चापे।।
एकान्यदिक्त्वे तु तदन्तरैक्यकलाभिरैन्द्री चलिताऽयनांशा।
वृत्तौ स्फुटाख्या खलु गोलयुक्त्या तन्मत्स्यतः स्यादिह याम्यसौम्या।।

यहां पर भी आचार्य कमलाकर भट्ट नें पूर्वोक्त विधि से प्रवेश एवं निर्गमकालिक भुजों का अन्तर दिगंश रूप में निकालकर उन दिगंशान्तर का वृत्तपरिधि में संस्कार कर सूक्ष्म दिक् साधन किया है। यहां उन्होंने त्रिज्या, दिग्ज्या एवं दिगंशकोटिज्या तथा दृग्ज्या, इसके अग्र में गया भुज एवं इसकी कोटि इन दोनों त्रिभुजों के सजातीय अनुपात द्वारा दिग्ज्या का साधन किया है। यथा–

$$\frac{\text{भु.} \times \text{त्रि.}}{\text{ज्यादृ.}} = \text{ज्यादि.} \; \frac{\text{भु.} \times \text{छाक.}}{\text{छाया}} = \text{दिग्ज्या}$$

अतः इसका चाप दिगंश सिद्ध होता है। इस प्रकार प्रवेश एवं निर्गम इन दोनों कालों के दिगंशों का साधन करके इनका एक दिशा में योग तथा भिन्न दिशा में अन्तर करने से जो मान प्राप्त हो उसका छाया वृत्त में निर्गम बिन्दु पर अयन दिशा में संस्कार करने से वास्तविक पूर्व बिन्दु प्राप्त होता है। शेष क्रियाएं पूर्वोक्त विधियों के अनुसार ही यहां भी होती हैं तथा पूर्वापर रेखा के समानान्तर वास्तविक रेखा का निर्माण हो जाता है। अब पुनः इस पूर्वापर रेखा के समानान्तर इष्ट रेखा के छाया वृत्त में स्थित पूर्व एवं पश्चिम दोनों प्रान्तों (छोर) को केन्द्र बनाकर पूर्वापर समानान्तर रेखा तुल्य व्यासार्द्ध से दो वृत्तों का निर्माण करेंगे। अब इन दोनों वृत्तों का जिन दो स्थलों पर परस्पर सम्पात होगा इन दोनों सम्पात बिन्दुओं में गई हुई एक रेखा करेंगे, यह रेखा दिग्ज्ञापक इस वृत्त के केन्द्र से होकर जाती हुई पूर्वापर के समानान्तर स्थित सूत्र पर लम्ब रूप में स्थित होकर इसे आधा करती हुई याम्योत्तर रेखा वृत्त परिधि में उत्तर एवं दक्षिण तरफ जिन दो स्थानों में वृत्त परिधि को स्पर्श करेगी उन दोनों बिन्दुओं से उत्तर एवं दक्षिण दिशा का बोध होगा। इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण इन चार दिशाओं का ज्ञान होने के बाद आप इनकी सहायता से विदिशा (कोण की दिशा) का ज्ञान करेंगे। ये पूर्वादि चारों दिशाएं परस्पर ९०-९ अंश के अन्तर पर सिद्ध होती हैं। अतः इन दो-दो दिशाओं के मध्य ४५-४५ अंश के अन्तर पर कोण की चारों दिशाएं क्रमशः पूर्व और दक्षिण के मध्य आग्नेय, दक्षिण और पश्चिम के मध्य नैऋत्य, पश्चिम-उत्तर के मध्य वायव्य तथा उत्तर-पूर्व के मध्य ईशान दिशा सिद्ध होती हैं। ऊपर बताए हुए क्रम में इन कोण की दिशाओं का ज्ञान करने के लिए आसन्नवर्ती किसी भी दो दिशाओं की बिन्दुओं से मत्स्य चाप द्वारा दिग्ज्ञापक वृत्त में इनका ज्ञान हो जाएगा। जैसे वृत्त में स्थित पूर्व एवं दक्षिण बिन्दु को केन्द्र मानकर पूर्वोक्त विधि से मत्स्य चाप द्वारा आग्नेय एवं वायव्य तथा पूर्व एवं उत्तर बिन्दुओं के केन्द्र से ईशान तथा नैऋत्य कोण की दिशा इस वृत्त में निश्चित होगी।

इस प्रकार आपने ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख तीन सिद्धान्त ग्रन्थ (सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि एवं सिद्धान्ततत्वविवेक) में कथित दिक् साधन को समझ लिया होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

बोध प्रश्न - 2

1. दिक् साधन में कितने अंगुल का शंकु का प्रयोग किया जाता है।
   क. १२ ख.१४ ग.१६ घ.१८
2. लम्बज्या में त्रिज्या मिलता है तो क्रान्तिज्या में क्या मिलेगा।
   क. छाया ख.पलभा ग.अग्रा घ. कोई नहीं
3. त्रिप्रश्न में क्या नहीं आता है।
   क. दिक् ख. देश ग.काल घ. पलभा
4. उर्ध्व एवं अध: ये किसके प्रकार है।
   क. दिक् के ख.छाया के ग. अग्रा के घ. चरखण्ड के
5. दिंगश की ज्या को क्या कहते है।
   क. पलभा ख. दिग्ज्या ग. वित्रिभ घ. भुज

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि दिक् साधन ज्योतिषशास्त्र के मूलाधार पक्षों में से एक है। ऋषियों ने किसी भी वस्तु के परिज्ञान के लिए दिक् साधन की व्यवस्था प्रतिपादित किया है। ज्योतिष में प्रयोग के तीन पक्ष है- दिक्- देश एवं काल। इनके ज्ञानाभाव में ज्योतिषशास्त्र द्वारा सम्यक् रूप से किसी भी तथ्य को जान पाना सर्वथा दुष्कर है। ज्योतिष के त्रिप्रश्नों (दिक् देश एवं काल) में से एक है- दिक्। सामान्यतया दिक् शब्द का अर्थ होता है- दिशा। दिग् व्यवस्था द्वारा ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत एवं इस पृथ्वी पर किसी की स्थिति का निर्धारण किया जा सकता है। क्योंकि इस अनन्त ब्रह्माण्ड में एवं विशाल भूपिण्ड पर किसी भी वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ या पिण्ड को देखने के लिए शून्य में अपने आप को कहाँ स्थापित कर, स्वयं के सापेक्ष उसे कहां ढूंढ़ा जाय? इसके लिए दिग् व्यवस्था ही एक मात्र आश्रय है। सामान्यतया दिक् या दिशा के बारे में आम लोग केवल इतना जानते हैं कि दिशायें केवल चार होती है- पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण, परन्तु ऐसा नहीं है। ज्योतिष शास्त्र में दिशाओं की संख्या १० कही गयी है। पूर्व, अग्नि कोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य कोण, पश्चिम, वायव्य कोण, उत्तर, ऐशान्य कोण, उर्ध्व एवं अध: दिशा। इनमें प्रधान पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण चार दिशा, चार कोण एवं उर्ध्व तथा अध: दिशाओं को विदिशा के नाम से भी जाना जाता है।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

दिक् – दिशा

सिद्धान्त - सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:।

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्।

शंकु – १२ अंगुलात्मक यन्त्र

दिशा – प्राच्यादि १० दिशायें होती है।

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – १ के उत्तर

1. क
2. ग
3. ग
4. ख
5. क

बोध प्रश्न – 2 के उत्तर

1. क
2. ग
3. घ
4. क
5. ख

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा

2. सूर्यसिद्धान्त – आर्ष ग्रन्थ, टिका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय

3. सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट।

4. वृहद्वकहड़ाचक्र – अवधबिहारी त्रिपाठी।

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. सिद्धान्तशिरोमणि –
2. सूर्यसिद्धान्त –
3. सिद्धान्ततत्वविवेक –
4. केतकीग्रहगणितम् –

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. सोदाहरण दिक् साधन कीजिये।
2. दिक् साधन का महत्व बताइये।
3. दिक् साधन का प्रयोजन सिद्ध कीजिये।
4. दिक् साधन का गणितीय एवं सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई - २ अयनांश विमर्श

इकाई की संरचना

२.१ प्रस्तावना
२.२ उद्देश्य
२.३ अयनांश परिचय
२.३.१ पंचांग साधन में अयनांश
२.३.२ सायन, निरयण पंचांग
२.४ अयनांश साधन
२.५ सारांश
२.६ पारिभाषिक शब्दावली
२.७ बोध प्रश्नों के उत्तर
२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
२.९ सहायक पाठ्यसामग्री
२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई- 603 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है- अयनांश विमर्श। इसके पूर्व की इकाई में आपने दिक् साधन का अध्ययन कर लिया है। अब आप यहाँ अयनांश सम्बन्धित विषय का अध्ययन करने जा रहे है।

अयनांश गणित ज्योतिष का मूलाधार है। लग्न साधन से लेकर ग्रहों की गति, स्थिति एवं उसका आनयन सभी अयनांश पर निर्धारित है। इसकी गणना मुख्यत: दो प्रकार का होता है- सायन एवं निरयण।

अत: आइए इस इकाई में हम सभी अयनांश से सम्बन्धित गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक को समझने का प्रयास करते हैं।

२.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- अयनांश की परिभाषा क्या है।
- अयनांश का साधन कैसे किया जाता है।
- अयनांश का गणितीय एवं सैद्धान्तिक पक्ष क्या है।
- सायन एवं निरयण किसे कहते है।
- अयनांश का क्या महत्व है।

२.३ अयनांश परिचय

गणित ज्योतिष में अयनांश एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। इसके ज्ञान से ही हम ग्रहों की यथार्थ स्थिति, एवं उसकी गति का बोध कर पाते हैं। साथ ही हमें यह भी ज्ञात होना चाहिए कि अयन एवं अयनांश दो पृथक-पृथक शब्द है। अयन दो होते हैं – उत्तरायण एवं दक्षिणायन। सूर्य की मकरादि छ: राशियों में स्थिति को उत्तरायण तथा कर्कादि छ: राशियों में स्थिति को दक्षिणायन कहते है। अयनांश भी अयन से ही सम्बन्धित होता है। वस्तुत: ज्योतिष में सामान्यतया दो प्रकार से अयनांश साधन का उल्लेख मिलता है – पहला सायन और दूसरा निरयण। आकाशस्थ समस्त बिन्दु

सायन मान से गतिमान है। लग्न के स्पष्टीकरण में भी अयनांश की आवश्यकता होती है।

अयनांश की स्थूल परिभाषा है - अयन सम्बन्धित अंश: अयनांश:। स: द्विविधम्। अर्थात् अयन सम्बन्धित अंश को अयनांश कहते है, और वह दो प्रकार का होता है – सायन और निरयण।

२.३.१ पंचांग साधन में अयनांश -

भारतवर्ष में पंचांगों की उत्पत्ति आरम्भ काल से ही धार्मिक क्रियाओं (व्रत, पर्व, यज्ञ, कर्मकाण्ड, अनुष्ठानादि) का समय निश्चित करने के लिए हुई है। कालान्तर में उनमें सामाजिक उत्सव और वर्तमान काल में राजकीय महत्व के कार्य भी जोड़ दिए गए हैं। हमारे समस्त प्राचीन सामाजिक उत्सवों को भी धार्मिक स्वरूप दिया गया है। हमारे भारत देश में कई शताब्दियों से विविध धर्म प्रचलित हैं। इससे हमारे पंचांग भी विविध प्रकार के बने हैं। इनके मुख्य प्रकार (1) हिंदू, (2) इस्लाम, (3) पारसी और (4) खिष्टीय है। आज के हिंदू पंचांगों के भी लगभग 100 से अधिक प्रकार पाए जाते हैं।

हमारे पंचांगों में उत्सवों और व्रतों के अतिरिक्त ग्रहण, सूर्योदयास्त, इष्ट घटनाओं के समय, आकाश में ग्रहों की स्थिति इत्यादि खगोलीय विषय दिए जाते हैं। खगोलशास्त्र आजकल पश्चिम में इतनी उन्नत स्थिति में आ गया है कि वहाँ के पंचांगों में दिए हुए खगोलीय घटनाओं के समय आकाशस्थित ग्रहों की प्रत्यक्ष घटनाओं के साथ सेकंड तक बराबर मिल जाते हैं और यहाँ हमारे पंचांगों का गणित इतना स्थूल हो गया है कि उनके ग्रहण काल में डेढ़ घंटे तक का अंतर पाया जाता है। इसका कारण यह है कि जिन ग्रंथों से हमारे पंचांग बनते हैं वे कम से कम ५०० से १००० वर्ष पुराने हैं और इन वर्षों में पश्चिम में गणित ज्योतिष में बहुत उन्नति हो गई है। इससे हमारे पंचांगों का गणित अर्बाचीन गणित ज्योतिष शास्त्र से करना चाहिए, जिससे वह प्रत्यक्ष आकाश के अनुसार यथार्थ उतरे। ऐसे गणित को "प्रत्यक्ष" गणित या "दृग्गणित" कहते हैं। आज गुजरात और महाराष्ट्र में समस्त पंचांग प्रत्यक्ष गणित से बनाए जाते हैं। पर भारत के अन्यान्य प्रदेशों में प्रत्यक्ष गणित से बहुत कम पंचांग बनाए जाते हैं। किंतु केवल प्रत्यक्ष गणित से हमारे पंचांगों का प्रश्न हल नहीं हो सकता । हमारे पंचांग सूर्यचंद्र की आकाशीय स्थिति के अनुसार बनाए जाते हैं और इनमें अन्य ग्रहों की स्थिति भी दी रहती है । स्थिति बतलाने की रीति यह है कि आकाश की एक निश्चित रेखा के ऊपर एक निश्चित बिंदु से ग्रहों के अंतर नापे जाते हैं ओर ये अंतर पंचांगों में दिए जाते हैं। उस निश्चित रेखा को "क्रांतिवृत्त", निश्चित बिंदु को "आरंभस्थान" और वहाँ से ग्रह के अंतर को "भोग" कहते हैं। पाश्चात्यों का आरंभस्थान निश्चित है और वह वसंतसंपात है। मगर हमारे पंचांग का आरंभस्थान कौन

सा बिंदु हो, इस विषय में हमारे पंडितों में बहुत मतभेद है। **वसंत संपात और हमारे आरंभ स्थान के बीच में जो अंतर है, उसको "अयनांश" कहते हैं।** इसका अर्थ यह हुआ कि अयनांश कितना है इस विषय में हमारे पंडितों में मतभेद है। अयनांश के निश्चय के बिना आरंभस्थान का निश्चय नहीं होता और आरंभस्थान के निश्चय के बिना पंचांग बन नहीं सकता। अत: **अयनांश** हमारे पंचांग की महत्वपूर्ण समस्या है। सम्प्रति केतकीग्रहगणित का अयनांश सर्वाधिक स्पष्ट मानकर पंचांगकार उसी का अपने पंचांग निर्माण में उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए आप उत्तर भारत के सर्वाधिक प्रचलित पंचांग हृषीकेष के मुखपृष्ठ पर देखेंगे तो आपको अयनांश – केतकरीय लिखा मिलेगा।

२.३.२ सायन, निरयण पंचांग -

जिस पंचांग में वसंतसंपात को आरंभस्थान माना जाता है, उसको "सायन" पंचांग कहते हैं और जिस पंचांग में इस संपात के अतिरिक्त किसी और बिंदु को आरंभस्थान माना जाता है, उसको "निरयण" पंचांग कहते हैं। वसंतसंपात, दक्षिणायन, शरत्संपात और उत्तरायण, ये चार बिंदु क्रांतिवृत्त के ऊपर अनुक्रम से ९०-९० अंश के अंतर से आए हैं। सूर्य स्थिर है, मगर पृथ्वी सूर्य के चारों और एक वर्ष में पूरा एक चक्कर लगाती है। परंतु हमें भ्रमवश ऐसा भासित होता है कि सूर्य ही हमारे चारों ओर घूम रहा है। सूर्य के इस भासमान वार्षिक मार्ग को "क्रांतिवृत्त" कहते हैं। इस मार्ग पर सूर्य एक वर्ष में पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ हमको दिखाई देता है।

दो संपात और दो अयन, ये चार बिंदु स्थिर नहीं, किंतु ये सब वार्षिक ५० विकला की बहुत छोटी गति से सतत पश्चिम की ओर वापस जा रहे हैं। ऋतुएँ, दिन और रात्रि का बढ़ना घटना, इन सब घटनाओं का आधार ये चार बिंदु हैं, अर्थात् जब सूर्य इन बिंदुओं के पास आता है, तब ये घटनाएँ होती हैं। इससे ऋतु, दिनमान, इत्यादि सायन वर्ष के अनुसार होते हैं। सायन वर्ष का मान ३६५ दिवस, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४६ सेकंड है।

निरयण पंचांग का आरंभ स्थान संपात के सिवाय कोई भी स्थिर या अस्थिर बिंदु हो सकता है। इससे जहाँ स्थिर आरंभ स्थान विवक्षित हो, वहाँ असंदिग्धता के लिए "निरयण" के स्थान पर "नाक्षत्र" शब्द का प्रयोग करना अधिक अच्छा है। तथापि "नाक्षत्र" के अर्थ में "निरयण" शब्द बहुत प्रयुक्त किया जाता है। तारे स्थिर हैं, इससे सूर्य किसी एक तारा, या स्थिर बिंदु से चलकर जितने समय के बाद फिर उस स्थिर बिंदु या तारा के पास पहुँचे उतने समय को "नाक्षत्र" वर्ष कहते हैं। नाक्षत्र वर्ष का मान ३६५ दिन, ६ घंटे, ९ मिनट और १० सेकंड है। तारे दृश्य और स्थिर हैं, उनके संबंध में ग्रहों के

आकाशीय स्थान नाक्षत्रपद्धति से हम बतला सकते हैं। यह नाक्षत्रपद्धति का विशेष उपयोग है। सायन

वर्ष नाक्षत्र

वर्ष से २० मिनट और २४ सेकंड छोटा है। हमारे पुराने ढंग के पंचांगों में, जो वर्षमान लिया जाता है, वह ३६५ दिन, ६ घंटे, १२ मिनट और ३६ सेकंड है। यह न शुद्ध सायन है और न शुद्ध नाक्षत्र। यह शुद्ध सायन वर्ष से लगभग २४ मिनट और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष से लगभग मिनट बड़ा है। यह वर्षमान लेने के कारण हमारी ऋतुएँ और तारों के बीच में ग्रहों के स्थान, ये सब हमारे प्रत्यक्ष अवलोकन और अनुभव से भिन्न आते हैं।

ऐसी स्थिति में हमको क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले हमारे लिए यह जान लेना आवश्यक है कि हमारे पंचांग में कौन-कौन से विषय आते हैं। पंचांग अर्थात् पाँच अंग ये हैं : तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण।

"तिथि" पूर्ण चंद्रबिंब का १५वाँ हिस्सा ओर "करण" ३०वाँ हिस्सा बतलाता है। "वार" एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय बतलाता है। "नक्षत्र" क्रांतिवृत्त का २७वाँ हिस्सा और "राशि" ३०वाँ हिस्सा हैं। "योग" सूर्य और चंद्र के भोगों का योग है। इसका कारण समझने के लिए खगोल की एक दो अन्य बातें जान लेना आवश्यक है।

आकाश का जो गुंबद जैसा गोलार्ध भाग हमें पृथ्वी पर ढक्कन सरीखा रखा हुआ भासित होता है, उसको नीचे की ओर बढ़ाकर यदि पूर्ण गोल किया जाय, तो उसे हम खगोल कहेंगे। पृथ्वी के विषुवत्त के तल को यदि चारों ओर बढ़ाया जाय, तो वह खगोल को एक वृत्त में काटेगा। इस वृत्त को हम "आकाशीय विषुववृत्त" कहेंगे। आकाश में दिखाई देनेवाले किसी पिंड का आकाशीय विषुववृत्त से, उत्तर या दक्षिण, जो अंतर होता है, यह उस पिंड की क्रांति (declination) कही जाती है। गणितशास्त्र का नियम है कि जब किसी दो पिंडों के भोगांशी (celestial longitudes) का योग या वियोग (अंतर) ० या १८० अंश होता है, तब उन दो पिंडों की क्रांति समान होती है और इसको "क्रांतिसाम्य" कहते हैं। सूर्यचंद्र के क्रांतिसाम्य का समय निकालना, पंचांग के "याग" अंग का उद्देश्य है।

इतना समझने के बाद हम यह सोच सकते हैं कि हमारा पंचांग सायन अथवा किस अयनांश का निरयण (नाक्षत्र) होना चाहिए। खगोल संबंधी कुछ ही विषय ऐसे हैं जिनमें सायन और निरयण का कोई संबंध नहीं रहता, अत: उनमें कहीं कोई मतभेद नहीं है, उदाहरणार्थ वार। जो विषय दो ग्रहों के अंतर पर निर्भर हैं, उनमें भी मतभेद नहीं है, क्योंकि ग्रहों के सायन और निरयण अंतर समान होते हैं। इसका कारण यह है कि भोगों का अंतर लेने में अयनांश वियोग क्रिया में उड़ जाता है। ऐसे विषय है

तिथि और करण। इन दोनों में सूर्य और चंद्र का अंतर लेना पड़ता है ग्रहण भी ऐसा ही विषय है। सूर्य के पास यदि कोई अन्य ग्रह आए, तो वह दिखाई नहीं देता और जब वह फिर सूर्य से दूर चला जाता है, तब पुन: दिखाई देने लगता है। इन घटनाओं को ग्रहों का "लोपदर्शन" अथवा "उदयास्त" कहते हैं। ये घटनाएँ सूर्य और ग्रह के बीच के अंतर पर निर्भर करती है, इससे इनमें भी सायन निरयण दोनों प्रकर के गणितों से एक ही उत्तर आता है।

बोध प्रश्न –

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें -

1. अयनांश .... होता है।
2. केतकरीय मत से वार्षिक अयन गति .... है।
3. अयनांश साधन का मुख्य .... प्रकार है।
4. लग्न साधन में .... की आवश्यकता होती है।
5. ग्रहलाघवीय अयनांश साधन में शक .... है।

सूर्य, चंद्र इत्यादि के दैनिक उदय और अस्त के साथ भी सायन या निरयण पद्धति का कोई संबंध नहीं। समस्त ग्रह, ताराओं के बीच, पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हैं, मगर हमारे दृष्टिभ्रम के कारण कभी कभी वे हमको कुछ समय तक उलटी गति से, अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर, चलते दिखाई देते हैं। इनकी ऐसी गति को "वक्री" गति कहते हैं। इस घटना के साथ भी सायन या निरयण पद्धति का कोई संबंध नहीं। इस प्रकार पंचांग के कुछ विषयों का सायन और निरयण पद्धति से कोई संबंध नहीं है और कुछ विषय ऐसे हैं जिनके सायन और निरयण गणितों के परिणाम समान आते हैं। इन दोनों प्रकारों के विषयों में सायन और निरयण का मतभेद नहीं। अब ऐसे विषय रहे जिनका सायन गणित और भिन्न भिन्न अयनांशों के निरयण गणित, ये सब एक दूसरे से भिन्न आते हैं। ऐसे विषयों में हमको क्या करना चाहिए, अब इसपर विचार करना आवश्यक है।

उत्तरायण, दक्षिणायन और वसंतादि ऋतुओं का संबंध सायन गणना के साथ है। निरयण गणना के साथ इनका संबंध नहीं है। इससे इन विषयों को सायन गणना के अनुसार ही निर्णीत करना चाहिए। उदाहरणत:, उत्तरायण और शिशिर ऋतु का आरंभ २२ दिसंबर से ही मानना चाहिए, १४ जनवरी से नहीं। इससे उलटे विषय हैं अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्र और मेष, वृषभ आदि राशियाँ। ये सब तारों के समुदाय हैं। ये तारे स्थिर हैं, इससे इनका गणित स्थिर आरंभस्थानवाली नाक्षत्र (निरयण) गणना से करना चाहिए, जिससे तारों के बीच में ग्रहों के स्थान यथार्थता से निर्दिष्ट हो सकें।

जब निरयण गणना की बात आती हैं, तब उसके स्थिर आरंभस्थान का अर्थात् अयनांश का प्रश्न स्वाभाविक ही उत्पन्न होता है। संपात और अयन निसर्गसिद्ध हैं, इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। निरयण गणना का स्थिर आरंभस्थान संपात के सदृश नैसर्गिक नहीं, मगर वह सांकेतिक प्रकार से बहुजन सम्मति से कोई भी लिया जा सकता है। यद्यपि इस विषय में हमारे पंडितों का ऐकमत्य नहीं हुआ, तथापि भारत शासन नियुक्त "पंचांग संशोधन सीमिति" (कैलेंडर रिफॉर्म कमिटी) ने जिस अयनांश की सिफारिश की है, उसे अब धीरे धीरे सभी पंचांगकार प्रयुक्त कर रहे हैं। वह इस प्रकार से है : 1963 ई. के प्रारंभ (जनवरी, 1) का अयनांश 23 डिग्री 20 मिनट 24.29 सेकेण्ड और वार्षिक अयनगति, अर्थात् अयनांश की वृद्धि = 50.27सेकेण्ड । इस वार्षिक गति से अयनांश भविष्य काल में सर्वदा बढ़ते रहते हैं। यदि भूतकाल का अनांश चाहें, तो इस गति से घटाकर लेना चाहिए।

पंचांग के अश्विनी आदि नक्षत्र और मेषादि राशियाँ क्रांतिवृत्त के समान विभाग हैं, मगर आकाश के अश्विनी आदि और मेषादि तारापुंज आकाश में समान विस्तारवाले नहीं है। ये समान अंतर पर भी स्थित नहीं हैं, अत: पंचांगस्थ और आकाशस्थ नक्षत्रों और राशियों में पूर्ण सादृश्य रहना संभव नहीं है। तथापि यथोचित स्थिर आरंभस्थान लेने से यह सादृश्य लगभग आ जाता है। संपात और अयन चल बिंदु हैं, अत: इनको आरंभस्थान मानने से पंचांग के और आकाश के नक्षत्रों और राशियों का सादृश्य कुछ समय के बाद नहीं रह जाएगा, यह स्पष्ट है।

पंचांग के दैनिक (विष्कंभादि) योगों का उद्देश्य सूर्य चंद्र का क्रांतिसाम्य है, यह ऊपर बतलाया गया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह गणित सायन पद्धति से करना चाहिए, यह भी समझाया गया है। इसमें और भी एक बात है। विष्कंभादि योगों में व्यतिपात 17वाँ योग है। इसे गणित सिद्धांत के अनुसार 14वाँ रखना चाहिए। इसका कारण, जैसा हमने ऊपर बतलाया है, यह है कि योग 0 (360) अंश अथवा 180 अंश होना चाहिए। सूर्य चंद्र के क्रांतिसाम्य को "महापात" कहते हैं, जो "व्यतिपात" और "वैधृत" नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें वैधृति 27वाँ योग है, जिसकी समाप्ति 360 डिग्री पर होती है। 180 डिग्री पर 13 योग होते हैं। इससे व्यतिपात 14वाँ योग होना चाहिए, मगर वह 17वाँ है। अतएव उपर्युक्त परिवर्तन आवश्यक है।

"पंचांग" में बतलाया गया है कि "वर्ष" नामक कालमान का हेतु वसंतादि ऋतु बतलाने का है, इससे वर्षमान सायन लेना चाहिए तथा इसके और भी कारण है । हमारे बहुत से सामाजिक उत्सव और धार्मिक कृत्य ऋतुओं के ऊपर निर्भर हैं, जैसे शरत्पूर्णिमा, वसंतपंचमी, शीतलजलयुक्त घट दान, शरद् के श्राद्ध का पायस भोजन, वसंत का निंबभक्षण, शरद् का नवान्नभक्षण इत्यादि । ये सब चांद्र मास के ऊपर निर्भर हैं, चांद्रमास अधिक मास पर निर्भर हैं, अधिक मास सौर संक्रांति के ऊपर निर्भर

हैं और सौर संक्रांति वर्षमान के ऊपर निर्भर है। यदि हमारा वर्षमान सायन न हो, तो हमारे सब उत्सव और व्रत गलत ऋतुओं में चले जायेंगें। अंतिम 1.500 वर्षों में, अर्थात् आर्यभट से लेकर आज तक तक की अवधि में हमारा, वर्षमान सायन रहने के कारण हमारे व्रतों और उत्सवों में लगभग 23 दिनों का अंतर पड़ गया है। इस अंतर को हम "अयनांश" कहते हैं। यदि यही स्थिति भविष्य में भी बनी रही तो हमारी शरत्पूर्णिमा वसंत ऋतु में और हमारी वसंतपंचमी शरद्ऋतु में आ जायगी। इस असंगति को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है सायन वर्षमान का अनुसरण। यह अनुसरण हम दो प्रकार से कर सकते हैं : - (1) "शुद्ध सायन" और (2) "विशिष्ट सायन"।

1. शुद्ध सायन - यह सुविदित है। वह वसंतसंपात से आरंभ होकर फिर वसंत संपात पर समाप्त होता है। इसमें अयनांश सर्वदा. (शून्य) रहता है। वर्तमान हिंदू पंचांग पद्धति के निर्माता आर्यभट के समय में, जो उत्सव जिन ऋतुओं में पड़ा करते थे, वे उत्सव उन्हीं ऋतुओं में आज भी पड़ेंगे। मगर इस पद्धति के अधिक मास वर्तमान प्रणाली के अधिक मासों से भिन्न आएँगे। हमारे आज के ज्योतिषी वर्ग में "पंचांगवाद" का ज्ञान अल्प होने और भिन्न अधिक मास के कारण उत्सव भिन्न मासों में आने से (प्रचलित पद्धति के अनुसार) शुद्ध सायन पंचांग का प्रचार नहीं होता। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पंचांग के अश्विनी आदि नक्षत्र और मेषादि राशियाँ तो नाक्षत्र (निरयण) ही रहेंगी। ही रहेंगी। सायण संक्रांतियों का उपयोग अधिक मास और चांद्र मास नाम के निर्णय के लिए होगा, जैसा आज भी अयनों और ऋतुओं के लिए उनका उपयोग होता है।

2. विशिष्ट सायन - शुद्ध सायन पंचांग का प्रचार आज कठिन है, इसलिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त पंचांग संशोधन समिति ने विशिष्ट सायन मार्ग की संस्तुति की है। इस मार्ग में भी वर्षमान तो सायन ही रहेगा, मगर अयनांश 23 अंश स्थिर रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि हमारे उत्सवों में और उनसे संबद्ध ऋतुओं में लगभग 23 दिनों का जो अंतर आज आता है, वह भविष्य में स्थिर रहेगा, और बढ़ेगा नहीं। दूसरा परिणाम यह होगा कि आज की प्रचलित पद्धति से जो अधिक मास आते है वे ही भविष्य में भी कुछ वर्षों तक आते रहेंगे, परंतु आगे धीरे धीरे उनमें भिन्नता बढ़ती जायगी। आज की प्रचलित पद्धति और शुद्ध सायन पद्धति इन दोनों के बीच का मध्यम मार्ग है। इस पद्धति के अश्विनी और मेष तथा आकाश के इन नामों के तारापुंजों में प्राय: वैसा ही सादृश्य रहेगा जैसा आजकल वर्तमान है। मगर कुछ समय के बाद उनमें बहुत अंतर पड़ जायगा। वैसी अवस्था आने पर इसका उपाय भी सोचा जायगा, जिसमें हमारे आजकल के आरंभस्थान मेष और अश्विनी के बदले मीन और उत्तरा भाद्रपदा इत्यादि को आरंभ स्थान मानने की व्यवथा रहेगी। इस प्रकार की युक्तियों से, पंचांग सायन रहने पर भी, पंचांग के और आकाश के नक्षत्रों का संबंध कालांतर में भी

ठीक बना रहेगा। अधिकांश जनता का संबंध ऋतुओं के साथ है। तारादिकों का संबंध केवल पंडित लोगों से है, जिनका अनुपात जनसाधारण में अत्यल्प है। वे विद्वान् हैं अत: तारों की यथार्थ गणना के लिए कोई अन्य व्यवस्था कर सकते हैं।

(1) भारत सरकार द्वारा नियुक्त पंचांग संशोधन समिति का "राष्ट्रीय पंचांग" इस विशिष्ट सायन मार्ग का एक उदाहरण है, यह ऊपर बतलाया गया है। यह मार्ग चांद्र मासों की व्यवस्था के लिए है। "राष्ट्रीय पंचांग" की दिनगणना के लिए सौर मास और प्रत्येक मास की निश्चित दिनसंख्या रखी गई है (अंगरेजी मासों की तरह), जिससे तिथियों के वृद्धि क्षय और अधिक मास की गड़बड़ी नहीं रहती। यह व्यवस्था केवल व्यावहारिक दिनगणना के लिए है। धार्मिक व्रतों लिए चांद्र मास, अधिक मास, तिथि इत्यादि तो हैं ही। दिनगणना में वर्ष के दिन 365 और प्रति चार वर्ष में एक वर्ष के 366 दिन होते है। इससे राष्ट्रीय दिनांकों का मेल अँगरेजी तारीखों से हमेशा बना रहता है, जैसा नीचे की तालिका में बतलाया गया है।

ब्रह्मगुप्त और लल्ल ने अयन चलन के संबंध में काई चर्चा नहीं की है, परंतु आर्यभट द्वितीय ने इस पर बहुत विचार किया है। अपने ग्रंथ 'मध्यमाध्याय' के श्लोक 11- 12 में इन्होंने 'अयन बिंदु' को एक ग्रह मानकर इसके 'कल्पभगण' की संख्या 5,78,159 लिखी है जिससे अयन बिंदु की वार्षिक गति 173 'विकला' होती है जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकार में स्पष्ट अयनांश जानने के लिए जो रीति बताई गई है उससे प्रकट होता है कि इनके अनुसार अयनांश 24 अंश से अधिक नहीं हो सकता और अयन की वार्षिक गति भी सदा एक सी नहीं रहती। कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढ़ते-बढ़ते १७३ विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट द्वितीय का समय वह था जब अयनगति के संबंध में हमारे सिद्धांतों को कोई निश्चय नहीं हुआ था।

मुंजाल के 'लघुमानस' में अयन चलन के संबंध में स्पष्ट उल्लेख है, जिसके अनुसार एक कल्प में अयन भगण १,९९,६६९ होता है, जो वर्ष में ५९.९ विकला होता है। मुंजाल का समय ८५४ शक या ९३२ ईस्वी है, इसलिए आर्यभट का समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिए। इनका समय ८०० शक के लगभग होना चाहिए। आचार्य वेंकटेश द्वारा विरचित केतकीग्रहगणित के अनुसार वार्षिक अयन गति ५०.२ विकला है, जो आजकल सबसे ज्यादा प्रचलित है। कालानुरोधेन इसमें भी अब स्थूलता आ गयी है।

२.४ अयनांश साधन

सूर्यसिद्धान्तीय अयनांश –

सृष्टयारम्भ में नाड़ी और क्रान्ति वृत्त के सम्पात् स्थान पर निरयणमेषादि था। क्योंकि

सृष्टयारम्भ में अयनांश नहीं थे। उस स्थान से वह सम्पात बिन्दु अल्पगति से पूर्वाभिमुख २७ अंश जाकर लौटा, उसी गति से पश्चिमाभिमुख २७ अंश जाता है। वहाँ से भी लौटता है, उस गति से ही पूर्व गति से जब अपने स्थान पर आता है तो १०८ अंश वह सम्पात् चल लेता है तब उस सम्पात् बिन्दु का एक अयन भगण होता है। प्राचीनाचार्यों ने वेध द्वारा अयन के चलन को जानकर अनुपात से एक महायुग में होने वाले ४३२०००० सौर वर्षों में अयन भगण ६०० बतलाया हैं।

यदि युग सावन दिनों में अयन भगण ६०० मिलते हैं तो अहर्गण में क्या?

= ६०० × अहर्गण / युग सावन दिन = भगणादि अयन गति आती है। इस का भुज बनाकर फिर से अनुपात करने पर ३६० अंशों में अयन भगण का चालन १०८ अंश होता है तो भुज के अंशों में क्या? = ३ × भुजांश/१० = भागफल अयनांश होगा।

मूल श्लोक : -

त्रिंशत् कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बिते।
तद्गुणादभूदिनैर्भक्ताद भगणांशदवाप्यते।।
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधा।।

अर्थात् एक महायुग में नक्षत्रों के भचक्र ३० × २० = ६०० की संख्या समान भचक्र अपने स्थान से पूर्व से चलित होता है। अर्थात् नाडीवृत्त एवं क्रान्तिवृत्त का जो सम्पात् सृष्टयादि में निरयण मेष स्थान होता है, वह २७ अंशों की दूरी तक पूर्व से पश्चिम की ओर जाकर वहाँ से लौटकर फिर से पूर्वगति से चलता हुआ अपने स्थान पर पहुँचने से अयन चलन चक्र का १ भगण पूरा होता है। वहाँ दोनों ओर २७ अंशों में इस सम्पात् के स्थान से आने जाने से ४ बार में १०८ अंशों की पूर्ति होने से १ भगण के अनुसार एक महायुग में ६०० भगण होते हैं। अर्थात् प्रत्येक भगण में १०८ अंश चलने पर अयन भगण के अनुसार एक महायुग में अयन चलन भगण ६०० होते हैं।

ग्रहलाघवीय अयनांश -

वेदाब्ध्यब्ध्यून: स्वरसहृत: शकोऽयनांशा:।

अर्थात् वर्तमान शक में ४४४ घटाकर ६० का भाग देने से लब्ध फल अयनांश होते हैं। इस अयनांश की वार्षिक गति ६० विकला मानी जाती है। अत: प्रति राशि में ५ विकला के अनुसार इष्ट सूर्य की गत राशि अंश से लब्ध विकलादि फल को वर्षारम्भकालिक अयनांश में जोड़ने से इष्टकाल के स्पष्टायनांश होते हैं।

उदाहरण के लिए माना कि - जन्म शक – १८४१, स्पष्ट सूर्य ३।७। राश्यादि है।

अत:, नियमानुसारेण - १८४१ – ४४४ = १३९७ शेष में ६० का भाग देने से लब्ध अंशादि

२३।१७ हुआ। स्पष्ट सूर्य ३।७ ३×५= १५।। ५×७/३० अंश से ७/६= १।१ + १५ = १६ विकला प्राप्त हुआ। अत: स्पष्टायनांश २३।१७।१३ हुआ।

नवीन विद्वानों के मतानुसार अयनांश साधन प्रकार –

वर्तमान शक में १८०० घटाकर शेष में एक स्थान पर ७० से और दूसरी स्थान पर ५० से भाग देकर अंशादि तथा कलादि क्रमश: दो फलों के अन्तर में २२।८।३३ अंशादि जोड़ने से वर्षारम्भ कालिक अयनांश होंगे। अयनाशं की वार्षिक गति ५०.२ प्रति विकला है। अत: स्पष्ट सूर्य के राश्यादि से अनुपात द्वारा लब्ध फल को उसमें जोड़ने से इष्टकालिक अयनांश होगा।

उदाहरण – माना कि जन्म शक – १८८१, अत: नियमानुसार,

१८८१- १८०० = ८१ इसमें ७० का भाग देने पर लब्ध अंशादि – ०।३५।८

पुन: ८१ में ५० का भाग देने से लब्ध फल कलादि – ०।४९।१२

अब – ०।४९।१२ (०।३५।८ – ०।०।४९) = ०।३४।१९।।

२२।८।३३ + ०।३४।१९ = २२।४२।५२ वर्षारम्भ कालिक स्पष्टायनांश हुआ।

मेषादि संक्रान्ति के आरम्भ में अयनांशचालन विकलादि –

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कु.	मीन	मासगति
०	४	८	१२	१६	२०	२५	३०	३४	३८	४२	४६	४
०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	१०

वर्षारम्भकालिक अयनांशा: -

शक	अयनांश	शक	अयनांश	शक	अयनांश
१८००	२२ ८ ३३	१८७४	२३ १० ३०	१८९५	२३ २८ ६
१८१०	२२ १६ ५५	१८७५	२३ ११ २०	१८९६	२३ २८ ५६
१८२०	२२ २५ १७	१८७६	२३ १२ १०	१८९७	२३ २९ ४६
१८३०	२२ ३३ ४१	१८७७	२३ १३ ०	१८९८	२३ ३० ३७
१८३५	२२ ३७ ५०	१८७८	२३ १३ ५०	१८९९	२३ ३१ २७
१८४०	२२ ४२ २	१८७९	२३ १४ ५१	१९००	२३ ३२ १७
१८४५	२२ ४६ १३	१८८०	२३ १५ ३१	१९०१	२३ ३३ ७
१८५०	२२ ५० २५	१८८१	२३ १६ २२	१९०२	२३ ३३ ५७
१८५२	२२ ५२ ५	१८८२	२३ १७ १२	१९०३	२३ ३४ ४७
१८५४	२२ ५३ ४६	१८८३	२३ १८ २	१९०४	२३ ३५ ३८
१८५६	२२ ५५ २६	१८८४	२३ १८ ५३	१९०५	२३ ३६ २८
१८५८	२२ ५७ ६	१८८५	२३ १९ ४३	१९०६	२३ ३७ १८
१८६०	२२ ५८ ४७	१८८६	२३ २० ३३	१९०७	२३ ३८ ८
१८६२	२३ ० २७	१८८७	२३ २१ २३	१९०८	२३ ३८ ५९
१८६४	२३ २ ८	१८८८	२३ २२ १३	१९०९	२३ ३९ ४९
१८६६	२३ ३ ४८	१८८९	२३ २३ ४	१९१०	२३ ४० ३९
१८६८	२३ ५ २८	१८९०	२३ २३ ५४	१९११	२३ ४१ २९
१८७०	२३ ७ ९	१८९१	२३ २४ ४४	१९१२	२३ ४२ १९
१८७१	२३ ७ ५९	१८९२	२३ २५ ३५	१९१३	२३ ४३ १०
१८७२	२३ ८ ४९	१८९३	२३ २६ २५	१९१४	२३ ४४ ०
१८७३	२३ ९ ३९	१८९४	२३ २७ १५	१९१५	२३ ४४ ५०

वर्षों की कलादि अयन गति बोधक चक्र –

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	२०	३०	४०
०	१	२	३	४	५	५	६	७	८	१६	२५	३३
५०	४०	३१	२१	११	१	५२	४२	३२	२२	४५	७	२९

अयनांश साधन के कई प्रकार ज्योतिष गणित मे प्रचलित हैं। यहां पर हम चित्रापक्षीय अयनांश साधन बतलायेंगे। क्योंकि आधुनिक पंचागकार इसी अयनांश को प्रयोग में ला रहे हैं। मेषादि विन्दु से बसंत-संपात विन्दु की दूरी अयनांश कहलाती है।चित्रा तारा से शरद संपात की दूरी भी यही होने के कारण इस अयनांश को चित्रा पक्षीय अयनांश भी कहा जाता है।

अयनांश गति-

सूर्यसिद्धान्त से- 54 विकला प्रतिवर्ष

ग्रहलाघव से - 60 विकला प्रतिवर्ष

दृश्य गणित से - 50.3 विकला प्रतिवर्ष

अयनांश साधन विधि -

> **खखाष्टम्यून 1800 शकात्खशैले: 70**
> **खपन्चभि 50 भाग कलादि लब्ध्यो:।**
> **यदंतरं तत्सहिता द्विहस्ता 22**
> **नवांक 9 दस्रा अयनांश संज्ञा ॥**

जिस वर्ष का अयनांश निकालना हो उस वर्ष के शाके में से 1800 घटाओ शेष को दो स्थानों मे लिखो एक स्थान में 70 का भाग देकर अंशादि फल लाओ। दूसरे स्थान पर 50 का भाग देकर कला दि फल लाओ। अंशादि फल मे कलादि फल घटाओ जो शेष बचे उसे 22^0 09’ 29’’ में जोड़ने से मेष संक्रांति के दिन अयनांश होगा।

उदाहरण - 1 मई 2011 का अयनांश

शाके 1933 -1800 =133

133/70 = लब्धि 1 शेष 63 गुणा 60 = 3780

3780/70 = 54

दूसरी बार

133/50 = लब्धि 2 शेष 33 गुणा 60 =1980

1980/50 = लब्धि 39 शेष 30 गुणा 60 = 1800

1800/50 = लब्धि 36

= 01^0 54’ 00’’ 00’’’

- 02’ 39’’ 36’’’

= 01^0 51’ 20’’ 24’’’

22^0 09’ 29’’

+01^0 51’ 20’’

=24^0 00’ 49’’ यह मेषार्क कालिक अयनांश हुआ।

1 मई 2011 को प्रात: 5:30 का सूर्य स्पष्ट

00 राशि 16 अंश 16 कला 31 विकला या 16.27 अंश

360 अंश मे अयन गति =50.3 विकला

16.27 अंश में अयन गति = 50.3 गुणा 16.27

= 824.88

824.88/360 = 2.29 विकला

इसे मेषार्क कालिक अयनांश में जोड़ देंगे जोड़ने पर 24^0 00’ 51 स्पष्ट अयनांश प्राप्त हुआ।

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया कि अयन सम्बन्धित अंश: अयनांश:। स द्विविधम् – सायन निरयणश्च। अर्थात् अयन सम्बन्धित अंश को अयनांश कहते है, वह दो प्रकार का होता है – सायन और निरयण । आकाशस्थ समस्त बिन्दु सायन मान से गतिमान है। अयनांश गणित ज्योतिष का एक अभिन्न इकाई है। आकाशस्थ समस्त बिन्दु सायन मान से गतिमान है। ग्रहस्पष्टीकरण पंचांग का प्राण माना जाता है, उसमें अयनांश के बिना शुद्ध ग्रहगणित की कल्पना नहीं की जाती सकती है। इस इकाई में अयनांश के महत्वपूर्ण बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है, गणितीय विधि से उसका साधन बताया गया है, जिससे पाठक गण पढ़कर अयनांश के ज्ञान को सरलता से प्राप्त कर लेगें।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

अयनांश – अयन सम्बन्धित अंशादि मान

पलभा – द्वाद्वशांगुल छाया

लंकोदय – लंका का उदय मान

निरयण - अयनांश रहित मान

सायन – अयनांश रहित मान

सुविदित – स्पष्ट रूप से जाना गया

अनुसरण - पीछे चलना

उदायास्त – उदय और अस्त

पंचांगस्थ – पंचांग में स्थित

संक्रान्ति – सूर्य का राशि परिवर्तन

उत्तरायण – मकरादि छ: राशियों में सूर्य की स्थिति का होना

२.७ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. अयन सम्बन्धित अंश
2. ५०.२ विकला
3. दो
4. अयनांश

5. ४४४

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ग्रहलाघव – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय
2. सूर्यसिद्धान्त – कपिलेश्वर शास्त्री
3. केतकीग्रहगणितम् – मूल लेखक- आचार्य वेंकटेश
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान – मीठालाल ओझा

२.९ सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. सिद्धान्तशिरोमणि
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न -

1. अयनांश को परिभाषित करते हुये उसका स्पष्ट रूप से साधन करें।

2. अयनांश के कितने प्रकार है। स्पष्ट कीजिये।

3. सूर्यसिद्धान्तीय अयनांश का वर्णन कीजिये।

4. आधुनिक मतानुसार अयनांश साधन कीजिये।

5. पंचांग में अयनांश की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

इकाई - ३ पलभा एवं चरखण्डानयन

इकाई की संरचना

३.१ प्रस्तावना

३.२ उद्देश्य

३.३ पलभा परिचय व साधन

३.४ चरखण्डानयन

३.५ सारांश

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

३.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

३.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई- 603 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आपने दिक् साधन एवं अयनांश का अध्ययन कर लिया है। अब आप यहाँ पलभा एवं चरखण्ड का अध्ययन करने जा रहे है।

पलभा गणित ज्योतिष की एक महत्वपूर्ण इकाई है। सूर्य जब सायन मेषादि में हो तभी दिनार्द्ध के समय १२ अंगुल शंकु के मान से पलभा का ज्ञान किया जाता है। इसका मान अंगुलादि में होता है। इसी से दिक् साधन, छाया साधन आदि का ज्ञान किया जाता है।

आइए इस इकाई में आप सभी के लिए पलभा एवं चरखण्ड सम्बन्धित गणितीय एवं उसका सैद्धान्तिक पक्ष का विश्लेषण करते हैं।

३.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- पलभा किसे कहते है।
- पलभा का साधन कैसे किया जाता है।
- पलभा का गणितीय एवं सैद्धान्तिक पक्ष क्या है।
- पलभा से चरखण्डादि का साधन कैसे किया जाता है।
- पलभा एवं चरखण्ड का क्या महत्व है।

३.३ पलभा परिचय व साधन

पलभा का शाब्दिक अर्थ है – १२ अंगुल की शंकु छाया। गणित ज्योतिष में इस द्वादशांगुल पलभा का महत्वपूर्ण योगदान है। अयनांश साधन के पश्चात् आप सभी को पलभा का ज्ञान होना परम आवश्यक है। अक्षांश के अनुरूप भिन्न-भिन्न स्थानों की अलग-अलग पलभा होती है। इसीलिए अक्षांश से भी पलभा का साधन करने का विधान है। ज्योतिष शास्त्र में स्थूल और सूक्ष्म दोनों विधियों से पलभा साधन की परम्परा रही है।

सर्वप्रथम पलभा किसे कहते है? आइए इसका विचार करते है -

जिस दिन सायन सूर्य, राशि- अंश- कला- विकला से शून्य हो अर्थात् जब सूर्य ठीक सम्पात बिन्दु पर हो, (यह समय २१ मार्च और २३ सितम्बर को होता है) जब दिन-रात बराबर होता है उस दिन मध्याह्न (दोपहर) के समय में १२ अंगुल की एक शंकु सम भूमि में किसी खुले स्थान में स्थापित करें। ठीक मध्याह्न के समय उस शंकु की जितनी छाया पड़े, उसे अंगुल व्यांगुल में नाप लेना चाहिये। यही नाप उस स्थान की **पलभा** होगी। जैसा कि आचार्यों ने कहा है कि -

मेषादिगे सायनभागसूर्ये दिनार्द्धजाभा पलभा भवेत् सा।

त्रिष्ठाहता स्युदशर्भिर्भुजगैर्दिग्भिश्चिरान्ताद् गुणोद्धृताऽन्त्या।।

इस प्रकार **सम्पात बिन्दु के मध्याह्न काल में १२ अंगुल की शंकु की छाया का जो नाप हो उसे पलभा कहते है।** मापन करते समय में समानता हो और अंगुल, प्रति अंगुल, तत्प्रति अंगुल तक ठीक – ठीक नाप लेकर लिख लेना चाहिये। एक लकड़ी में नाप का चिह्न नापने के लिये बनाकर रख लेना चाहिये। जो शंकु स्थापित करें सम भूमि में बिल्कुल सीधी स्थापित करें जिससे उसके दोनों और ९० – ९० अंश के कोण रहें।

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार पलभा –

जिस दिन सूर्य विषुवद् वृत्त पर होता है अर्थात् जिस दिन सूर्य सायन मेष या सायन तुला बिन्दुओं पर आता है उस दिन समतल भूमि पर सीधे गड़े हुए १२ अंगुल के शंकु की छाया मध्याह्न कालिक जितनी बड़ी होती है, उसी को पलभा कहते है। क्षेत्र द्वारा पलभा ज्ञान -
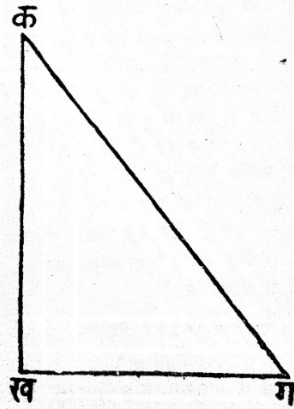
क्षेत्र में समतल भूमि के ख बिन्दु पर क ख शंकु सीधा गड़ा है और क ख की नाप १२ अंगुल है तो सायन संक्रान्ति के दिन मध्याह्न काल में क ख की छाया यदि ख ग हो तो ख ग की नाप को ही ख स्थान की पलभा, विषुवद्भा, अक्षभा इत्यादि कहेंगे। इस पलभा का मान सब जगह एक सा नहीं होता

वरन् अक्षांश के अनुसार बढता-घटता रहता है। विषुवद् रेखा पर जहाँ अक्षांश शून्य होता है सायन मेष संक्रान्ति के दिन ख ग का मान शून्य हो जाता है। विषुवत् रेखा से ज्यों-ज्यों उत्तर या दक्षिण जायेंगे त्यों-त्यों पलभा का मान बढ़ता जायेगा। उत्तर गोल में पलभा शंकु से उत्तर दिशा में होगी और दक्षिण गोल में दक्षिण दिशा में, इसलिए पलभा से किसी स्थान का अक्षाश सहज ही जाना जा सकता है। हमारे देश में इसीलिए अक्षांश अंशों में प्रकट करने की जगह पलभा की नाप में जो अंगुलों में ली जाती है, प्रकट करने की परिपाटी है। ख क ग कोण को ख स्थान का अक्षांश कहते है, इसीलिए,

अक्षांश की स्पर्शरेखा - $\frac{\text{खग}}{\text{खक}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

इससे स्पष्ट है कि पलभा के ज्ञान से अक्षांश का मान कैसे जाना जा सकता है।

एवं विषुवति छाया स्वदेशे या दिनार्धजा।
दक्षिणोत्तरयोरेव सा तत्र विषुवत्प्रभा।।

अर्थात् सूर्य जिस दिन विषुवत् वृत्त पर हो उस दिन मध्याह्नकाल में जिस स्थान की उत्तर दक्षिण रेखा पर १२ अंगुल शंकु की जितनी लम्बी छाया पड़े उस स्थान की विषुवत्प्रभा या पलभा होती है।
इसके द्वारा जो पलभा का मान आता है वह स्थूल होता है। क्योंकि सायन मेष या सायन तुला संक्रान्ति के दिन, जिस दिन मध्याह्न काल मे शंकु की छाया नाप कर पलभा ज्ञात की जाती है, मध्याह्न काल में सूर्य ठीक विषुवत् वृत्त पर नहीं होता, वरन् कुछ आगे या पीछे रहता है। मध्याह्न काल में ठीक विषुवत् वृत्त पर सूर्य के आने का संयोग कई वर्ष बाद आता है। इस दिन सूर्य की क्रान्ति प्रत्येक घण्टे में प्राय: एक कला के अनुसार से बदलती है। इसलिए सायन मेष या तुला संक्रान्ति शुद्ध काल गणना से जानकर सूर्य की मध्याह्न काल की क्रान्ति जान लेनी चाहिए और इसका संस्कार कर लेने के बाद शुद्ध पलभा ज्ञात करनी चाहिए।

अक्षांश जानने की रीति –

शंकुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते।
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा।।

अर्थात् शंकु और उसकी छाया अर्थात् पलभा को अलग-अलग त्रिज्या ३४३८ से गुणा करके

प्रत्येक गुणनफल को विषुवत्कर्ण से भाग दे देने पर क्रम से लम्बज्या और अक्षज्या आयेगी जिनके धनु क्रम से लम्बांश और अक्षांश होंगे।

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन मध्याह्न काल में १२ अंगुल शंकु का जो छायाकर्ण होता है, वही विषुवत्कर्ण, पलकर्ण या अक्षकर्ण कहलाता है। इसीलिए उपर के क्षेत्र में क ग विषुवत्कर्ण है। अत:

$$\text{विषुवत्कर्ण} = \sqrt{\text{पलभा}^{२} + \text{शंकु}^{२}}$$

शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का अन्तर अक्षांश के समान क्यों?
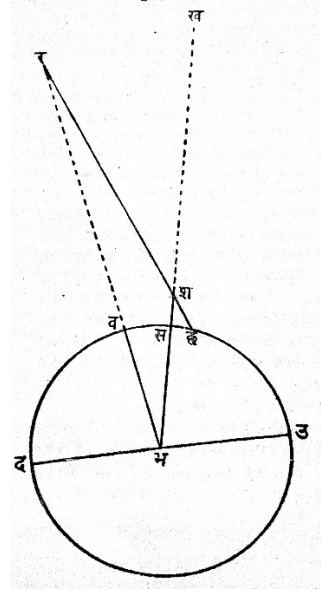
रेखा गणित के नियम से - < स श छ = < र श ख

= < श र भ + < र भ श

उ स व द = भूतल की उत्तर दक्षिण रेखा

उ = उत्तरी ध्रुव

द = दक्षिणी ध्रुव

स = वह स्थान जहाँ श स शंकु गड़ा है।

च = विषुवत्रेखा का बिन्दु

ख = स स्थान का खस्वस्तिक

र = विषुवद्वृत्त पर रवि का स्थान

स छ = पलभा

श छ = विषुवत्कर्ण

भ = पृथ्वी का केन्द्र

परन्तु भूकेद्र से सूर्य का अन्तर भ र प्राय: ९ करोड़ २९ लाख मील है और पृथ्वी का अर्द्धव्यास भ स अथवा भ श (क्योंकि स श १२ अंगुल) ४००० मील है। इसलिए श र भ इतना छोटा कण है कि यह शून्य माना जा सकता है।

< स श छ = < र भ श

= < व भ स

= अक्षांश

अर्थात् शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का कोण अक्षांश के समान होता है। इसलिए पलभा और विषुवत्कर्ण के बीच का कोण जो पहले का पूरक कोण होता है। लम्बांश के समान हुआ।
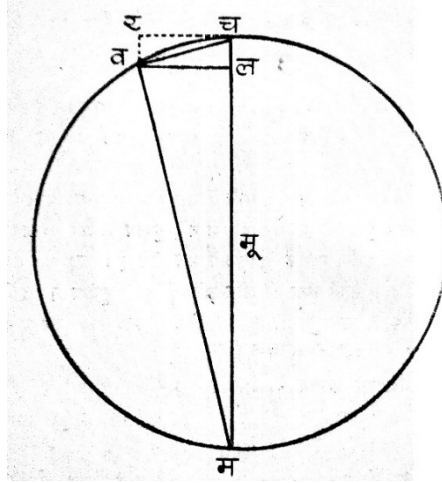
अक्षांश से पलभा ज्ञात करना –

तज्ज्याक्षज्याऽथ तद्वर्गं प्रोज्झय त्रिज्याकृते: पदम्।

लम्बज्याऽक्षगुणोऽर्कघ्न: पलभाप्तोऽवलम्बक:।।

किसी दिन के मध्याह्न काल के सूर्य की क्रान्ति और नतांश से अक्षांश जानकर पलभा की गणना की जा सकती है।

$$\sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{अक्षज्या}^२} = \text{लम्बज्या}$$

और $\frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} = \text{पलभा}$

सूर्यसिद्धान्त की रीति अनुसार अक्षांश से पलभा ज्ञात करना –

उदाहरण –

प्रयागराज का अक्षांश २५°।२५ है तो प्रयाग की पलभा क्या होगी?

अक्षज्या = २५°।२५ की ज्या = १४७४

इसलिए - लम्बज्या = $\sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{अक्षज्या}^२}$

$= \sqrt{३४३८^२ - १४७४^२}$

$= \sqrt{(३४३८ + १४७४)\ (३४३८ - १४७४)}$

$= \sqrt{४९१२ \times १९६४}$

= ३१०६

पलभा = $\frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}}$

$= \frac{१४७४ \times १२}{३१०६}$

= ५.६९ अंगुल पलभा मान हुआ।

यही नवीन रीति से –

पलभा = १२ × अक्षांश स्पर्शरेखा

= १२ × स्परे २५।२५

= १२ × ०.४७५२ अंगुल

= ५.७०२४ अंगुल

= ५.७ अंगुल।

सायन स्पष्ट सूर्य जिस दिन के जिस समय में ०।०।०।० होता है उस समय वह सूर्य विषुवत् और क्रान्ति वृत्त के चल सम्पात मेषादिक बिन्दु पर होता है। उस दिन के ठीक मध्याह्न समय में जल की

तरह समान भूमि धरातल में जिस देश, नगर या ग्राम में १२ अंगुल माप की जो अंगुलात्मक आया होती है उसका नाम पलभा या अक्षभा या अक्षच्छाया होता है। खगोल विद्या के गणितज्ञों द्वारा यह एक अनूठा अनुसन्धान किया गया। इस अंगुलात्मक छाया को तीन जगह रखकर उसे क्रमश: १०,८,१०/३ से गुणा करने से क्रमश: मेषादिक तीन राशियों एवं व्युत्क्रम से कर्कादिक तीन राशियों का चरखण्ड होता है।

उदाहरण – अल्मोड़ा का पलभा मान – ६।४७ है।

अत: -

६।४७	६।४७	६।४७
×१०	× ८	× १०
६०।४७०÷६०	४८।३७६÷६०	६०।४७०÷६०
७	६	७
६७।५०	५४।१६	६७।५० / ३ = २२।३६

६८, ५४, २३ ये तीन अल्मोड़ा का **चरखण्ड** मान हुआ। गोलीय रीति के अनुसार चरखण्ड सदैव अहोरात्रवृत्त में होता है। जैसा कि आचार्य भास्कर सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है -

उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकाल:।
तज्ज्यात्र कुज्या चरशिंजनीस्याद् व्यासार्द्धवृत्ते परिणामिता स्यात्।।

गोल परिभाषा के अनुसार पलभा -

सायनाजतुलादिस्थे सूर्ये छाया दिनार्धजा।
द्वादशांगुलशंकारोया सा तत्र पलभा स्मृता।।

जिस दिन सायन सूर्य मेषादि (क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के सम्पात्) में प्रवेश करता है, उस दिन के मध्याह्नकालिक द्वादशांगुल शंकु की छाया स्व-स्व स्थान में पलभा होती है।

चर साधन –

स्यात् सायनोष्णांशुभुजर्क्षसंख्य।
चरार्धयोगो लवभोग्यघातात्।।
खाग्न्याप्तियुक्तस्तु चरं धनर्णं।
तुलाजषट्के तपनेऽन्यथास्ते।।

सायन सूर्य के भुजा की राशि तुल्य संख्यक चरखण्डों के योग में चरखण्ड का जो भोग्य खण्ड है

उससे गुणित शेषांश में ३० से भाग देकर लब्ध फल को उक्त चरखण्डों के योग से जोड़ने से अभीष्ट समय में चर हो जाता है। तुलादि और मेषादि ६ राशियों में स्थित सूर्य में उदयकाल में चर को क्रमश: धन और ऋण करना चाहिए किन्तु सायंकाल में इसके विपरीत अर्थात् तुलादि और मेषादि के सूर्य में चर को क्रमश: ऋण और धन करना चाहिए।

यदि स्वस्थान के अतिरिक्त किसी दूर के स्थान की पलभा निकालने की आवश्यकता पड़ जाये तो उस निमित्त उसी स्थान पर जाना और इष्ट समय अर्थात् 21 मार्च तक समय की प्रतीक्षा करना, बहुत ही असुविधा जनक है । इस कारण अक्षांश पर से पलभा निकालने की रीति भी जान लेनी चाहिये जिसके आधार पर किसी भी देश या स्थान की पलभा निकाली जा सकती है।

किसी स्थान के अक्षांश जानने की आवश्यकता हो तो प्रारम्भिक ज्ञान खण्ड में बताई रीति से ध्रुवतारा की उँचाई नाप कर अपनें स्थान का अक्षांश जान सकते है या किसी विद्यालय क या सरकारी नक्शों को देखने पर जहॉ इष्ट स्थान दिया हो। प्राय: सभी नक्शों में अक्षांश और देशान्तर दिया रहता है उसको देखकर इष्ट स्थान के अक्षांश की खोज करना चाहिये।

विषुवत् संक्रान्ति के दिन मध्यान्ह काल में सूर्य ठीक विषुवद् वृत्त पर नहीं रहता अपितु थोड़ा इधर उधर रहता है। सूर्य उस समय बिल्कुल विषुवद् वृत्त पर ही हो, ऐसा अवसर कई वर्षो के बाद ही आता है। लेकिन प्राचीन काल से ही इसी पलभा द्वारा लग्न साधनार्थ चरखण्ड बनाये जाते रहे है । इसी कारण इस पद्धति द्वारा साधित लग्न में भी स्थूलता बनी ही रहती है। इसी पलभा का नाम अक्षभा या विषुवदभा भी है। वह 0 अक्षांश पर शून्य रहती है । तथा उत्तर दक्षिण की ओर हटने पर इसका मान बढ़ने लगता है। अत: जहॉ का अक्षांश ज्ञात हो, वहॉ की पलभा अक्षांशों द्वारा सहज ही जानी जा सकती है। अथवा पलभा ज्ञात हो तो उससे स्थानीय अक्षांश भी ज्ञात हो जाता है।

अक्षांश द्वारा पलभा साधन का अन्य उदाहरण –

1. अक्षांशों को 10 से गुणाकर, गुणनफल को 625 में से घटा लें।
2. शेष का वर्गमूल लेकर उसे 25 में से घटाने पर पलभा होती है।

उदाहरणार्थ -

दिल्ली का अक्षांश 28.39 × 10 = 286.30

625 – 286.30 = 338.30 का वर्गमूल लेना होगा।

सावयव अंको का वर्गमूल निकालने के लिये यह विधि अपनायें।

1. √ 338 = 18, शेष 14 बचे ।
2. शेष में 1 जोड़कर 60 से गुणा किया तो 15 × 60 = 900 हुआ।

3. 900 + 30 (पूर्व शेष) = 930 में पहले के मूल 18 को दुगुना कर व उसमें 2 जोड़कर 18 × 2 = 36 + 2 = 38 से 930 में भाग दिया
4. 930 ÷ 38 = 24 लब्धि हुई। अत: सूक्ष्म वर्गमूल 18.24 रहा। इसे 25 में से घटाने पर 25- 18.24 = 6.36 दिल्ली की पलभा है।

पंचांगों में दिल्ली की पलभा 6.32 या 6.33 भी दी होती है। अंगुलों में भेद अपरिहार्य है।

पलभा द्वारा अक्षांश ज्ञान – अंगुलादि पलभा को पॉच से गुणा करें। तदुपरान्त पलभा के वर्ग को 10 से भाग देकर लब्धि को पंचगुणित पलभा में से घटा दें तो अक्षांश होंगे। यह एक स्थूल प्रकार है। शुद्ध सूक्ष्म प्रकार के लिये बहुत सी क्रियायें है।

दिल्ली पलभा 6.36×5 = 33.00 है। $(6.36)^2 = 43.33$

43.33 ÷ 10 = 4.21 को घटाया। 33.00 – 4.21 = 28.39 दिल्ली का अक्षांश हुआ। यदि 28^0 38 उत्तरी अक्षांश से क्रिया करें तो पलभा 6.35 सिद्ध होती है।

३.४ पलभा से चरखण्ड साधन

भारतवर्ष के प्रमुख स्थलों के पलभादि का मान ज्ञात कर आचार्यों द्वारा लिख दिए गए है। उस आधार पर हम काशी के पलभा मान से यहाँ चरखण्ड साधन करते हैं -

काशी की पलभा – 5।45 है, तो वहाँ का चरखण्ड साधन –

5।45	5।45	5।45
× 10	× 8	× 10
50।450÷60	40।360÷60	50।450÷60
+7	+6	+ 7
57	46	57 ÷ 3 = 19

इस प्रकार 57, 46, एवं 19 ये काशी के तीन चरखण्ड हुये।

पलभा चक्र सारिणी

अक्षांश	पलभा			अक्षांश	पलभा			अ.	पलभा			अ.	पलभा		
	अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्
1	0	12	34	16	3	26	24	31	7	12	36	46	12	25	37
2	0	25	9	17	3	40	5	32	7	29	53	47	12	52	5
3	0	37	44	18	3	53	56	33	7	47	31	48	13	19	34

4	0	50	21	19	4	7	55	34	7	5	38	49	13	48	18
5	1	3	0	20	4	20	0	35	7	24	7	50	14	18	3
6	1	15	40	21	4	26	22	36	8	43	5	51	14	49	8
7	1	28	23	22	4	50	52	37	9	2	25	52	15	21	32
8	1	41	10	23	5	5	83	38	9	20	30	53	15	55	30
9	1	54	0	24	5	20	31	39	9	43	1	54	16	31	6
10	2	6	54	25	5	35	42	40	10	4	9	55	17	8	34
11	2	19	55	26	5	51	7	41	10	25	50				
12	2	33	0	27	6	6	0	42	10	40	18				
13	2	46	12	28	6	22	48	43	11	11	24				
14	2	59	28	29	6	39	4	44	11	35	24				
15	3	12	54	30	6	55	41	45	12	0	0				

अक्षांश से पलभा निकालना –

एक त्रिज्या का मान– 3438। इस प्रकार इष्ट अक्षांश की ज्या Sine। ज्या लॉग सारिणी के सहारे निकाली जाती है। फिर तो अक्षांश की ज्या होगी वह अक्षज्या होगी।

कोटिज्या – लम्बज्या = त्रिज्या^{2} **- अक्षज्या^{2}।**

पलभा और चरखण्ड साधन की रीति –

जिस दिन अयनांशसहित सूर्य - राशि अंश कला विकला से शून्य हो या उस दिन मध्याह्नके समय समान भूमि पर बारह अंगुलका शंकु रखे जो छाया पड़े उसको **पलभा** कहते हैं। इस पलभा को तीन स्थान में लिखकर क्रमसे १०।८।१० से गुणा करे, अन्त के तीसरे गुणनफल में ३ तीन का भाग देने से क्रम से तीन चरखण्ड होते हैं।

उदाहरण – काशी की पलभा ५ अंगुल ४५ प्रतिअंगुल है इसको पहले १० से गुणा करा तब ५७ अंगुल ३० प्रतिअंगुल यह प्रथम चरखण्ड हुआ। फिर पलभा ५ अंगुल ४५ प्रति अंगुल को ८ से गुणा करा तब ४६ अंगुल . प्रति अंगुल यह द्वितीय चरखण्ड हुआ। पलभा ५ अंगुल ४५ प्रति अंगुलको १० दशसे गुणा करा तब ५७ अंगुल ३० प्रति अंगुल हुआ। इसमें ३ का भाग दिया तब १९ अंगुल १० प्रति अंगुल तीसरा चरखण्ड हुआ। इस प्रकार प्रथम चरखण्ड ५७ अ ., ३० प्र . हुआ , दूसरा चरणखण्ड ४६ अं . हुआ , तीसरा चरखण्ड १९ अं ., १० प्र . हुआ।

चर, चर संस्कार एवं भुज संस्कार -

सायनरवि की पूर्वोक्त केन्द्र से भुज लाने की रीति के अनुसार भुज लावे , वह भुज यदि राशि शून्य होय तब अंशो को छोडकर केवल अंशादि मात्रा को प्रथम चरणखण्ड से गुणा करे और यदि भुज में एक राशि होय तो राशि को छोडकर अंशादि को द्वितीय चरणखण्ड से गुणा करे और यदि भुज में दो राशि हों तो राशि को छोडकर केवल अंशादि मात्रा को तृतीय चरणखण्ड से गुणा करे जो गुणन फल हो उसमें ३० तीसका भाग देय जो लब्धि मिले उसमें जिस चरणखण्ड से गुणा करा हो उससे पहला चरण खण्ड जोड दें, तब चर होता है। वह सायन मेषादि छःराशिके भीतर होय तो ऋण होता है और छः राशिसे अधिक तुलादिसे कम छः राशि होय तो धन होता है। यदि सायंकालीन ग्रह करना होय तो चरको विपरीत ग्रहण करे अर्थात् सायन रवि मेषादि छः राशियों के भीतर होय तो धन और तुलादि छः राशि के भीतर होय तो ऋण जाने।

वह चर यदि धन होय तो मन्दस्पष्ट रवि की विकलाओं में युक्त कर दे और ऋण होय तो घटा देय तब स्पष्ट रवि होता है । चरको २ से गुणा करकें नौका भाग देय जो लब्धि होय उसका चरके समान धन ऋण समभ्क्ते और मन्द स्पष्ट रविकी कलाओं में युक्त करदेय (इसको चर संस्कार और द्वितीयफलसंस्कार कहते हैं।

रवि के मन्द फल में उसका भाग देकर जो लब्धि हो उसको भी चर के समान धन ऋण मानें और मन्दस्पष्ट रवि के अंशो में युक्त कर दे (इसको मन्दफलसंस्कार और तृतीयफलसंस्कार भी कहते हैं। इन दोनों रीतियों का चन्द्र स्पष्ट करने में काम पडता है)।

उदाहरण -- शाके ५३३४ में ४४४ घटाये तब शेष रहे १०९० यह कला हैं, इनमें ६० का भाग दिया तो लब्धि हुई १८ अं . १० कला यह अयनांश है , इसको मन्दस्पष्ट रवि १ रा . ५ अं . ४४ कला १० वि. में युक्त किया तब १ रा . २३ अं . ५४ क . १० वि . यह सायन रवि हुआ। यह सायन रवि तीन राशिके भीतर है इस कारण यह भुज है। अब इस १ रा . २३ अं . ५४ क . १० वि . भुजमें एकराशि है इस कारण अंशादिको (२३ अं . ५४क . १०वि .) को द्वितीय चरखण्ड ४६ से गुणा करा तब गुणनफल १०९९ अं . ३१ क . ४० वि . हुआ इसमें ३० का भाग दिया तब लब्धि हुई ३६ विकला ३९ प्रतिविकला , प्रथम चरखण्ड से गुणा किया था इस कारण द्वितीय चरखण्ड ५७ को लब्धि ३६ वि . ३९ प्रतिविकला में युक्त किया तब ९३ विकला ३९ प्रति विकला यह चर हुआ ऋण है क्योंकि सायन रवि मेषादि छः के भीतर है। इस कारण मन्द स्पष्टरवि १ राशि ५ अंश ४४ कला १० विकलामें चर ९३ वि . अर्थात् १ क . ३३ विकलाको घटाया तब शेष रहा १ रा . ५ अं ४२ क . ३७ वि . यह स्पष्ट रवि हुआ।

दिनमान रात्रिमान और अक्षांश लाने की रीति -

यदि सायन रवि मेषादि छः राशिके अन्तर्गत हो तो उसको उत्तर गोलीय कहते हैं और यदि सायनरवि तुलादि छः राशिके अन्तर्गत हो तो उसको दक्षिणगोलीय कहते हैं। इसी प्रकार यदि सायन रवि मकरादि छः राशिके अन्तर्गत हो उसको उत्तरायण कहते हैं और यदि कर्कादि छः राशि के भीतर हो तो दक्षिणायन कहते हैं , पीछे लाये हुए पलात्मक चर का यदि सायन रवि उत्तरगोलीय हो तो **१५** पन्द्रह घडी में युक्त करे और सायनरवि दक्षिणगोलीय हो तो पलात्मक चर **१५** पन्द्रह घडी में घटा दे जो शेष रहे वही दिनार्द्ध होता है। उस दिनार्द्धको **३०** घड़ी में घटा दे तब जो शेष रहे सो रात्र्यर्द्ध होता है। तदनन्तर दिनार्द्धको द्विगुणित करने से दिनमान होता है और रात्र्यर्द्ध को द्विगुणित करने से रात्रिमान होता है और दिनमान तथा रत्रिमान को जोड़ने से अहोरात्र मान होता है। पलभा को पांच से गुणा करके जो गुणफल मिले उसको अंशात्मक माने उसमें पलभा के वर्ग का दशवां भाग अंशात्मक घटा दे जो शेष रहे वह अक्षांश होता है। अक्षांश सर्वदा दक्षिण होता है , क्योंकि हिन्दु स्थान के

दक्षिण (विषुववृत्त रेखा) है।

उदाहरण ---पलात्मक चर **९३** यह सायनरवि उत्तरगोलीय है क्योंकि मेषादि छः राशिके अन्तर्गत है इस कारण चर **९३** को **१५** घड़ीमें युक्त किया तब **१६** घड़ी **३३** पल यह दिनार्द्ध हुआ। इस दिनार्द्ध **१६** घ . **३३**प . को **३०** घड़ीमें घटाया तब शेष रहा **१३** घ . **४७** पल रात्र्यर्द्ध हुआ। दिनार्द्ध **१६** व . **३३** पलको द्विगुणित किया तब **३३**घ . **६** पल यह दिनमान हुआ रात्र्यर्द्ध **१३** घ . **२७** को द्विगुणित किया तब **२६** घड़ी **५४** पल यह रात्रिमान हुआ। दिनमान और रात्रिमानको जोडा तब **६०** घड़ी अहोरात्रिमान हुआ।

पलभा **५** अंगुल **४५** प्रतिअंगुलको **५** से गुणा करा तब **२८** अं . **४५** कला हुआ। तब पलभा **५।४५** का वर्ग किया तो **३३।३** हुआ इसमें दश का भाग दिया तब **३** अं . **१८** क . **१८** वि . लब्धि हुए इनको पांचसे गुणा करी हुई पलभा **२८** अं . **४५** क . में युक्त करा तब **२५** अं . **२६** क . **४२** वि . यह काशी का दक्षिण अक्षांश हुआ।

बोध प्रश्न

1. सायन सूर्य नाड़ी –क्रान्ति के सम्पात् बिन्दु पर किस तिथि को होता है।

   क. २१ मार्च ख. २२ मार्च ग. २१ सितम्बर घ. २१ नवम्बर

2. पलभा का मान होता है –

   क. १४ अंगुल ख.१५ अंगुल ग. २० अंगुल घ. १२ अंगुल

3. निम्न में पलभा का पर्याय है-

   क. विषुवत्भा ख. अक्षभा ग. कोटिभा घ. कोई नहीं

4. पलभा का साधन किससे किया जाता है।

   क. क्रान्ति से ख. अक्षांश से ग. लम्बांश से घ. विषुवांश

5. काशी की पलभा का मान कितना है।

   क. ६।४५ ख.५।४५ ग.८।४५ घ.१०।४५

6. निम्न में अल्मोड़ा का पलभा मान है -

   क. ६।४७ ख.८।७४ ग.७।४७ घ.६।४२

7. गोलीयरीति के अनुसार चरखण्ड कहाँ होता है।

   क. अहोरात्र वृत्त में ख. क्रान्ति वृत्त में ग. लम्बांश में घ. नाड़ी में

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि पलभा का शाब्दिक अर्थ है – १२ अंगुल की शंकु छाया। गणित ज्योतिष में इस द्वादशांगुल पलभा का महत्वपूर्ण योगदान है। अयनांश साधन के पश्चात् आप सभी को पलभा का ज्ञान होना परम आवश्यक है। अक्षांश के अनुरूप भिन्न-भिन्न स्थानों की अलग-अलग पलभा होती है। इसीलिए अक्षांश से भी पलभा का साधन करने का विधान है। ज्योतिष शास्त्र में स्थूल और सूक्ष्म दोनों विधियों से पलभा साधन की परम्परा रही है। जिस दिन सायन सूर्य, राशि- अंश- कला- विकला से शून्य हो अर्थात् जब सूर्य ठीक सम्पात बिन्दु पर हो, (यह समय २१ मार्च और २३ सितम्बर को होता है) जब दिन-रात बराबर होता है उस दिन मध्याह्न (दोपहर) के समय में १२ अंगुल की एक शंकु सम भूमि में किसी खुले स्थान में स्थापित करें। ठीक मध्याह्न के समय उस शंकु की जितनी छाया पड़े, उसे अंगुल व्यांगुल में नाप लेना चाहिये। यही नाप उस स्थान की पलभा होगी। पलभा को तीन स्थानों में रखकर क्रमश: १०,८,१० से गुणा कर तीसरे स्थान में गुणित संख्या में ३ का भाग देना चाहिए। इस प्रकार संस्कार करने से चरखण्ड का साधन हो जाता है। चरखण्ड सदैव अहोरात्रवृत्त में होता है।

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

पलभा – सायन सूर्य जिस दिन सम्पात् बिन्दु पर हो, उस दिन मध्याह्नकालिक १२ अंगुल शंकु को सम भूमि पर स्थापित करने से उससे उत्पन्न छाया को पलभा कहते है। इसका मान अंगुलादि में होता है।

विषुवत्भा - पलभा का पर्याय।

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्।

शंकु – १२ अंगुलात्मक यन्त्र

सिद्धान्त – सिद्ध: अन्ते यस्य स सिद्धान्त:।

चरखण्ड – पलभा से चरखण्ड का साधन किया जाता है। यह अहोरात्रवृत्त में होता है।

त्रिगुणित – ३ संख्या से गुणित

३.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. घ
3. क
4. ख
5. ख
6. क
7. क

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तिशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टीका – पं. सत्यदेव शर्मा
2. सूर्यसिद्धान्त – आर्ष ग्रंथ:, टीका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय
3. करणकुतूहल – मूल लेखक – भास्कराचार्य।
4. ग्रहलाघव – मूल लेखक – गणेश दैवज्ञ, टीका – प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय
5. केतकीग्रहगणितम् – मूल लेखक – आचार्य वेंकट।

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान
2. गोल परिभाषा
3. केशवीय जातक पद्धति

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. पलभा किसे कहते है। स्पष्ट कीजिये।
2. सोदाहरण पलभा साधन कीजिये।
3. चरखण्ड से क्या तात्पर्य है। काशी की पलभा ५।४५ से चरखण्ड का साधन कीजिये।
4. अल्मोड़ा का पलभा मान बताते हुए चरखण्ड साधन कीजिये।

5. पलभा एवं चरखण्ड पर टिप्पणी लिखिये।

6. क्षेत्र प्रदर्शित करते हुए पलभा साधन कीजिये।

7. स्वकल्पित अक्षांश से पलभा साधन कीजिये।

इकाई - ४ लग्नानयन

इकाई की संरचना

४.१ प्रस्तावना
४.२ उद्देश्य
४.३ लग्न परिचय
४.४ लग्न साधन
४.५ सारांश
४.६ पारिभाषिक शब्दावली
४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर
४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
४.९ सहायक पाठ्यसामग्री
४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

४.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई- 603 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है।इस इकाई का शीर्षक है – लग्नानयन। इसके पूर्व की इकाई में आपने दिक् साधन, अयनांश, पलभा एवं चरखाण्डादि का अध्ययन कर लिया है। अब आप यहाँ लग्नानयन का अध्ययन करने जा रहे है।

भास्कराचार्य के अनुसार जातक शास्त्र लग्नबलाश्रित है और लग्न ग्रहाश्रित है। अत: लग्न का महत्व जातक शास्त्र के लिए सर्वोपरि है। लग्न शुद्ध होगा, तभी फलादेशादि कर्तव्यादि भी शुद्ध होगा। अत: इसका ज्ञान परमावश्यक है।

इसलिए आइए इस इकाई में आप सभी के लिए लग्न से सम्बन्धित गणितीय- सैद्धान्तिक एवं फलित पक्ष का विश्लेषण करते हैं।

४.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- लग्न किसे कहते है।
- लग्न का साधन कैसे किया जाता है।
- लग्न के कितने प्रकार है।
- लग्न का महत्व क्या है।
- जातक शास्त्रों में लग्न की क्या भूमिका है।

४.३ लग्न परिचय

आप सभी जानते है कि ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता और होरा या फलित। जिस प्रकार सिद्धान्त ज्योतिष का मूल है- ग्रहगणित, उसी प्रकार फलित, जातक अथवा होरा ज्योतिष का मूलाधार है- लग्न। अथवा इस प्रकार भी कह सकते है कि सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र का फलित पक्ष लग्नाश्रित है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस बात का समर्थन स्वयं भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में भी किया है – '**नूनं लग्नबलाश्रितं पुनरयं**

तत्स्पष्टखेटाश्रयम्''...0 इत्यादि श्लोक के माध्यम से। अतएव लग्न का महत्व ज्योतिष शास्त्र में अद्वितीय है। प्राचीन रीति के अनुसार लग्न साधन के मुख्यत: दो प्रकार है- १. भुक्त २. भोग्य। आधुनिक समय में साम्पातिक एवं लॉंगथेरियम विधि से भी लग्न का साधन करते है, जिसे एफेमेरिज में लिखा जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि लग्न क्या है? लग्न किसे कहते है? आइए इस पर विचार करते है। सूर्योदय के समय सूर्य जिस राशि में हो वही राशि लग्न होगी, यह निश्चित है। लग्न शब्द से ही प्रतीत होता है कि एक वस्तु का दूसरे वस्तु में लगना। इसीलिए कहा गया है कि **- लगतीति लग्नम्** । वस्तुत: लग्न में यहीं होता है क्योंकि इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त का जो स्थान उदयक्षितिज में जहॉ लगता है , वही राश्यादि (राशि, अंश, कला , विकला) **लग्न** होता है। जैसा कि गोलपरिभाषा में कहा है –

भवृत्तं प्राक्कुजे यत्र लग्नं लग्नं तदुच्यते।
पश्चात् कुजेऽस्त लग्नं स्यात् तुर्यं याम्योत्तरे त्वध:।।
उर्ध्वं याम्योत्तरे यत्र लग्नं तद्दशमाभिधम्।
राश्याद्य जातकादौ तद् गृह्यते व्ययनांशकम्।।

अर्थात् क्रान्तिवृत्त उदयक्षितिज वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉ स्पर्श करता है, उसे लग्न कहते है। पश्चिम दिशा में जहॉ स्पर्श करता है,उसे सप्तम लग्न तथा अध: दिशा में चतुर्थ लग्न और उर्ध्व दिशा में दशम लग्न होता है। लग्न की यह परिभाषा सैद्धान्तिक गोलीय रीति से कहा गया है। पंचांग में भी दैनिक लग्न सारिणी दिया होता है । उसमें एक लग्न 2 घण्टे का होता है। इस प्रकार से 24 घण्टे में कुल 12 लग्न होता है। यह लग्न पंचांग में मुहूर्त्तों के लिये दिया गया होता है। किस लग्न में कौन सा कार्य शुभ होता है तथा कौन अशुभ, इसका विवेचन पंचागोक्त लग्न के अनुसार ही किया जाता है।

४.४ लग्न साधन

लग्न साधन के लिए सैद्धान्तिक अथवा गणितीय प्रकार के लिये कहा गया है –

तत्काले सायनाऽर्कस्य भुक्तभोग्यांश संगुणात्।
स्वोदयात्खाग्नि लब्धं यद् भुक्तं भोग्यं रवेस्त्यजेत्।।
इष्टनाड़ी पलेभ्यश्च गतगम्यान्निजोदयान्।
शेषं खत्र्या हतं भक्तमशुद्धेन लवादिकम्।।
अशुद्धशुद्धभे हीन युक्तनुर्व्ययनांशकम्।

अर्थात् तात्कालिक स्पष्टसूर्य में अयनांश जोड़ने से सायन सूर्य होता है। सायन सूर्य के भुक्त या भोग्यांशों को सायन सूर्य की राशि के स्वोदय मान से गुणा करें। तब गुणनफल में 30 का भाग देने से लब्धि भोग्य या भुक्त काल होती है । इस भोग्य भुक्त काल को इष्टकाल के पलों में से घटाकर जो शेष रहे उसमें से आगे की राशियों के भुक्त प्रकार प्रकार में पिछली राशियों के स्वोदय मान को घटाते जाएँ। जब न घटे तो शेष को 30 से गुणाकर अशुद्ध राशिमान से भाग देने से लब्धि अंश कलादि होती है। उस अंश कला के पहले अशुद्ध राशि में से एक घटाकर रखने से **'सायन लग्न'** व उसमें से अयनांश घटाने पर '**निरयण लग्न**' होता है। उदाहरणार्थ -

लग्नानयनम् -

माना कि **सूर्यस्पष्ट** – 4।27^0।50।0 राश्यादि है , **अयनांश** - 23^0।45।35 है, पूर्व अध्याय के अनुसार पलभा एवं चरखण्ड का ग्रहण कर लेते है, इष्टकाल 8।20 घटयादि है तो लग्नानयन श्लोकानुसार इस प्रकार से होगा –

स्पष्ट सूर्य - 4।27^0।50।0

अयनांश - + 23^0।45।35

5 । 21^0। 35 ।35 - **सायन सूर्य**

30^0। 00 ।00

\- 21^0 । 35 ।35 सायन सूर्य को घटाने पर

8^0 । 24 । 25 भोग्यांश

लग्न साधन भुक्त या भोग्य प्रकार से किया जा सकता है, यहॉ भोग्य रीति से किया जा रहा है।

सायन सूर्य कन्या राशि का है अत: कन्या राशि के उदय मान 345 से भोग्यांश को गुणा किया । गुणनफल 2898 । 11 । 25 आया । इसमे 30 का भाग देने पर 96।36।22 पलात्मक मान आया जो भोग्यकाल है।

हमारा इष्टकाल 8।20 घटयादि है तथा उसका पलात्मक मान $8 \times 60 + 20 = 500$ पल हुआ ।

अब इष्ट पलों में से भोग्य को घटाया –

500 । 00 । 00

\- 96 । 36 । 22

403 । 23 । 38 पल मिले ।

इन पलों में से जहॉ तक का पलात्मक मान घट सके, घटाने पर –

403 । 23 । 38

- 345 । 00 ।00 तुला राशि का मान - तुला शुद्धराशि

58 । 23 । 38

अशुद्ध राशि वृश्चिक हुई, (नहीं घटने के कारण)।

शेष पलों को 30 से गुणा किया –

58।23।38

× 30

1740। 690 । 1140

इसमें अशुद्ध राशि वृश्चिक के उदय मान 352 से भाग दिया , भाग देने पर 4 अंश 56 कला 36 विकला आया, अत: 7 । 4^0 । 56 । 36 सायन लग्न है।

इनमें से पूर्व युक्त अयनांश घटाने से निरयण लग्न होगा अत: -

7 । 4^0 । 56 । 36

- 23^0 । 45 । 35 - अयनांश

6 । 11^0 । 11 । 01 निरयण लग्न स्पष्ट।

इसी लग्न स्पष्ट के आधार पर हम जन्मांग चक्र का भी निर्माण करते है। जन्मांग चक्र में जातक का जिस समय में जन्म हुआ होता है, उस समय को हम पंचांग में दैनिक लग्न सारिणी में देख लेते है। पश्चात् उस लग्न को जन्मांग चक्र में लिखकर तात्कालिक प्रश्न कुण्डली का निर्माण कर लेते है। किन्तु जन्मांग चक्र में गणितीय रीति से लग्नस्पष्ट का साधन कर जन्मांग चक्र में लग्न को लिखते है।

साम्पातिक काल से लग्न साधन

साम्पातिक काल –

साम्पातिक काल से लग्नादि साधन करने की पद्धति विशेष सरल होती है। इसमें गणित का विशेष जंजाल नहीं है तथा साधित लग्न भी प्रामाणिक होता है। वर्तमान में यह विधि लोकप्रिय होती जा रही है।

ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य जातक का भविष्य कथन या किसी घटना का फलादेश करना है। फलादेश करने के लिए सही जन्मकुंडली की आवश्यकता होती है और जन्मकुंडली में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका लग्न की होती है। यूं तो लग्न साधन करने के लिए पंचांग से प्रथमदृष्टया प्रत्येक लग्न के लिए प्रारंभ एवं समाप्ति काल देखकर किया जा सकता है। लेकिन उसमें लग्न के अंश कितने शुद्ध हैं इसमें आशंका रहती है। सार्वभौमिक एवं सर्वसम्मति रूप से एन. सी. लाहिरी द्वारा रचित ''टेबल आफ एसेन्डेंट'' जो कि निरयण पद्धति पर आधारित है, द्वारा लग्न साधन शुद्ध माना गया है।

लग्न साधन कैसे करें? यह आप निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। जन्म कुंडली निर्माण के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। जन्म तिथि, जन्म समय एवं जन्म स्थान। उदाहरण: जन्म तिथि: 11 जुलाई 1964, जन्म समय: 21.30 घंटे (IST) जन्म स्थान: दिल्ली लग्न साधन करने के लिए सर्वप्रथम साम्पातिक समय की आवश्यकता होती है। अतः सर्वप्रथम दिये गये जन्म विवरण के आधार पर हमें साम्पातिक काल की गणना करनी होगी। **साम्पातिक काल क्या है ?** किसी तारे के सापेक्ष मापा गया समय **साम्पातिक काल** कहलाता है और यह तारा चित्रा नक्षत्र कहलाता है। इसी कारण निरयण पद्धति में प्रयुक्त अयनांश चित्रा पक्षीय अयनांश कहलाता है। किसी विशेष स्थान पर निश्चित समय पर साम्पातिक काल का समय प्रतिदिन 3 मिनट 56.55536 सेकंड की दर से बढ़ता रहता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पृथ्वी की दो गतियां होती हैं। पहली अपनी धुरी पर और दूसरी गति सूर्य के चारों ओर। अर्थात यदि पृथ्वी पर कोई बिंदु लिया जाए तो वह बिंदु वापस अपनी पूर्व स्थिति में 24 घंटे में आ जाता है परंतु यही बिंदु यदि ब्रह्मांड में किसी तारे के संदर्भ में देखा जाए तो उस तारे के सम्मुख पुनः 3 मिनट 56.5536 सेकंड पूर्व आ जाता है। इस तरह पृथ्वी का वह बिंदु तारे के सम्मुख पुनः 23 घंटे 56 मिनट 4.091 सेकंड में आ जाता है। साम्पातिक काल की गणना एफेमेरिज़ द्वारा लग्न गणना के लिए ”टेबल आफ एसेन्डेंट“ की सहायता लेते हैं।

साम्पातिक इष्टकाल स्थान –

यद्यपि आजकल परम्परागत पंचागों में भी दोपहर 12 बजे या रात्रि बजे का साम्पातिक काल दिया जाने लगा है, लेकिन एन0सी0लहरी के पंचांग में दिया गया साम्पातिक काल सर्वाधिक शुद्ध होता है। साम्पतिक कालि में अधिकतम अशुद्धि या भिन्नता एक सेकेण्ड तक ही चल सकती है। शुद्ध साम्पातिक इष्टकाल का साधन इस प्रकार करना चाहिये –

माना कि 14.09.2013 को प्रात: 9:30 बजे दिल्ली का साम्पातिक काल जानना है लहरी की लग्न सारिणी से 14 सितम्बर का साम्पातिक काल ग्रहण किया। उसमें 2013 का साम्पातिक काल संस्कार भी जोड़ा।

		घ0मि0से0
14 सितम्बर का सा0का0 -		11।31।07
2013 का सा0का0 -	+	02। 50
		11।33।57

यह साम्पातिक काल सार्वत्रिक रूप से दोपहर बजे का रहा। इसमें दिल्ली का सा0काल संस्कार + 0.03 सेकेण्ड जोड़ने से 11|34|00 घंटे सा0काल दिल्ली में स्थानीय मध्याह्न अर्थात् दोपहर 12:00 बजे LMT का हो गया। ध्यातव्य हो कि साम्पातिक काल सदैव स्थानीय समय में ही अभिव्यक्त किया जाता है। दोपहर 12 : 00 बजे के साम्पातिक काल से प्रात:काल के स्थानीय इष्ट समय को घटाने व दोपहर बाद का इष्ट समय होने से योग करने पर स्थानीय अभीष्ट समय का साम्पातिक काल प्राप्त हो जायेगा। दिल्ली के लिये स्थानीय समय का साम्पातिक काल प्राप्त हो जायेगा। दिल्ली के लिये स्थानीय समय बनाने हेतु स्टैण्डर्ड समय में 21 मिनट 8 सेकेण्ड घटाई जाती है। इसे ज्ञात करने की विधि यहीं आगे बताई जा रही है। अत: प्रात: 9:30 IST को दिल्ली का LMT या स्थानीय समय बनाने के लिये उक्त संस्कार किया।

9:30 A.M भारतीय स्टे0 टा0 IST
- 0|21|28
9|8|52 A.M स्थानीय समय या LMT

हमारे पास दिल्ली का 12 बजे का सा0का0 उपलब्ध है तथा 9.08.52 बजे का जानना है तो 12 बजे से अभीष्ट समय जितना पीछे है , उतना समय हम 12 बजे के सा0का0 में से घटा देंगे। एतदर्थ 12.00 – 9.8.52 घंटे = 2.51.8 घंटे का अन्तर प्राप्त हुआ। इस अन्तर में एक संस्कार प्रति घंटा 10 सेकेण्ड की दर से करना आवश्यक है। इसकी सारिणी भी लहरी की एक पुस्तक में दी गई है। अत: 2.51.8 घंटे + 28 सेकेण्ड = 2.51.36 घण्टे अन्तर को दोपहर 12 बजे के साम्पातिक काल में से घटा देने पर अभीष्ट समय का साम्पातिक काल ज्ञात हो जायेगा।

12 बजे का पूर्व प्राप्त सा0का0 - 11.34 .00
ऋण अन्तर - 2|51| 36
8.42.24 अभीष्ट साम्पातिक काल।

यही हमारा 14 सितम्बर 2013 का साम्पातिक काल हुआ।

साम्पातिक काल से लग्नानयन –

पूर्व में बताये गये साम्पातिक इष्टकाल साधन को पुन: से संक्षेप में व प्रयोगात्मक रूप से करते हैं। सर्वप्रथम स्टै0 टा0 9:30 A.M को स्थानीय समय बनाये। एतदर्थ स्टै0 अन्तर 21 मिनट 8 सेकेण्ड को स्टै0 टा0 में से घटाया तो 9.30.00 - 0.21.08 = 9.08.52 A.M स्थानीय समय या LMT हुआ। यह समय दोपहर 12 बजे से कितना पहले है यह जानने के लिये इसे 12 बजे में से

घटाया तो 12:00 -9.08.52 = 02.51.08 घण्टे अन्तर प्राप्त हुआ। इसे प्रतिघण्टा 10 से0 की दर से बढ़ाया, क्योंकि पृथ्वी भ्रमण के 24 घण्टे × 10 सेकेण्ड = 24 ×60 ×60 × 10 सेकेण्ड = 24 × 36000 सेकेण्ड = 864000 सेकेण्ड वाले भेद को मिटाना आवश्यक है। इसके लिये लहरी की लग्न सारिणी के पृष्ठ 5 पर एक सारणी भी दी गई है।

2घण्टे का संस्कार = 20 सेकेण्ड

51 मिनट का संस्कार = + 08 सेकेण्ड लगभग

28 सेकेण्ड

अत: शुद्ध व कार्य योग्य अन्तर 2.51.08 घंटे + 0.00.28 घंटे जोड़ने से 2.51.36 हुआ। इसे 12 बजे के साम्पातिक काल 11.34.00 में से घटाया –

11.34.00 घंटे 12 बजे का साम्पातिक काल

2 .51.36 घंटे संस्कृत का अन्तर

8.42.24 अभीष्ट कालीन साम्पातिक काल

हमने दिल्ली के अक्षांश 28^0. 39 पर निर्मित लग्नसारिणी लहरी की पुस्तक का अवलोकन किया। हमारा साम्पातिकइष्टकाल 8.42.24 घंटे है।

	रा0अं0क0
8 घंटे 40 मिनटपर लग्न	6 . 11. 56
2 मिनट का संस्कार	0. 0. 26
24 सेकेण्ड का अन्तर	+ 6।12^0। 27

उक्त लग्न प्राप्त हुआ। इसमें अभी अयनांश संस्कार करना शेष है। लहरी की सभी लग्न सारिणियॉ 23 अंश अयनांश के आधार पर बनी हैं। वर्तमान में अयनांश 23^0 .45 है। अत: 45 इसमें से घटाना आवश्यक है,तब हमारा अभीष्ट निरयण लग्न होगा।

6.12^0.27 हुआ 23 अयनांश पर लग्न

45

6.11^0.42 हुआ 23^0 45 अयनांश पर लग्न।

लग्न साधन की प्रक्रिया द्वारा ही दशम लग्न का ज्ञान भी लहरी की लग्न सारिणी से दशम लग्न वाले पृष्ठ से किया जा सकता है।

8 घंटे 40 मिनट पर दशम लग्न - 3.14.35

2 मिनट 24 सेकेण्ड का संस्कार - + 0.0.36

3।15^0।11

इसमें लग्न की तरह ही 45 का अयनांश संस्कार करने से अभीष्ट दशम लग्न या $3.14^0.26$ प्राप्त हुआ।

बोध प्रश्न : -

1. लग्न किसे कहते है।

   क. लगतीति लग्नम्   ख. पंचांग को   ग. जन्मपत्री को   घ. कुण्डली को

2. फलित शास्त्र किस पर आधारित है।

   क. पंचांग पर   ख. कुण्डली पर   ग. ग्रह पर   घ. लग्न पर

3. लग्न साधन की कितने प्रकार है –

   क. २   ख.३   ग.४   घ.५

4. उदयक्षितिज वृत्त क्रान्तिवृत्त में पूर्वदिशा में जहाँ स्पर्श करता है, उसका नाम क्या है-

   क. पलभा   ख. चरखण्ड   ग. लग्न   घ. कोई नहीं

5. एक लग्न का मान कितने घण्टे के बराबर होता है –

   क. ३ घण्टा   ख.२ घण्टा   ग. ४ घण्टा   घ. ५ घण्टा

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता और होरा या फलित। जिस प्रकार सिद्धान्त ज्योतिष का मूल है- ग्रहगणित, उसी प्रकार फलित, जातक अथवा होरा ज्योतिष का मूलाधार है- लग्न। अथवा इस प्रकार भी कह सकते है कि सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र का फलित पक्ष लग्नाश्रित है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस बात का समर्थन स्वयं भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में भी किया है – **'नूनं लग्नबलाश्रितं पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयम्''**...0 इत्यादि श्लोक के माध्यम से। अतएव लग्न का महत्व ज्योतिष शास्त्र में अद्वितीय है। प्राचीन रीति के अनुसार लग्न साधन के मुख्यत: दो प्रकार है- १. भुक्त २. भोग्य। आधुनिक समय में साम्पातिक एवं लॉंगथेरियम विधि से भी लग्न का साधन करते है, जिसे एफेमेरिज में लिखा जाता है।सूर्योदय के समय सूर्य जिस राशि में हो वही राशि लग्न होगी, यह निश्चित है। लग्न शब्द से ही प्रतीत होता है कि एक वस्तु का दूसरे वस्तु में लगना। इसीलिए कहा गया है कि -

लगतीति लग्नम्। वस्तुत: लग्न में यहीं होता है क्योंकि इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त का जो स्थान उदयक्षितिज में जहॉ लगता है , वही राश्यादि (राशि, अंश, कला , विकला) लग्न होता है।

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

लग्न – लगतीति लग्नम्। उदयक्षितिजवृत्त क्रान्तिवृत्त में पूर्व दिशा में जहाँ सम्पात् करता है, उसका नाम लग्न है।

भुक्त - जो भोग कर लिया हो।

भोग्य – जो भोगना शेष हो।

राश्यादि – राशि, अंश, कला एवं विकला

खेट – ग्रह

लग्नबलाश्रित – लग्न बल पर आश्रित या आधारित

क्रान्ति – सूर्य का नाड़ीवृत्त से उत्तर या दक्षिण अन्तर का नाम क्रान्ति है।

४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. घ
3. क
4. ग
5. ख

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तिशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टीका – पं. सत्यदेव शर्मा
2. सूर्यसिद्धान्त – आर्ष ग्रन्थ:, टीका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय
3. गोल परिभाषा – टीका – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय
4. ग्रहलाघव – मूल लेखक – गणेश दैवज्ञ, टीका – प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय
5. केतकीग्रहगणितम् – मूल लेखक – आचार्य वेंकट।

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. गोल परिभाषा
2. जन्मपत्र व्यवस्था
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान
4. व्यावहारिक ज्योतिष
5. सुगम ज्योतिष प्रवेशिका

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. लग्न किसे कहते है? स्पष्ट कीजिये।
2. भोग्य रीति से लग्न का साधन कीजिये।
3. साम्पातिक काल से लग्न का साधन कीजिये।
4. लग्न का महत्व प्रतिपादित कीजिये।
5. स्वकल्पित लग्न का साधन कीजिये।

इकाई - ५ अक्षक्षेत्र परिचय

इकाई की संरचना

५.१ प्रस्तावना

५.२ उद्देश्य

५.३ अक्षक्षेत्र परिचय

५.४ अक्षक्षेत्र साधन

५.५ सारांश

५.६ पारिभाषिक शब्दावली

५.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

५.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

५.९ सहायक पाठ्यसामग्री

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

५.१ प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई- 603 के प्रथम खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – अक्षक्षेत्र परिचय। इसके पूर्व की इकाई में आपने दिक् साधन, अयनांश, पलभा एवं चरखण्ड तथा लग्नादि का अध्ययन कर लिया है। अब आप यहाँ अक्षक्षेत्रादि का अध्ययन करने जा रहे है।

अक्ष क्षेत्र से सम्बन्धित क्षेत्र को अक्षक्षेत्र कहा जाता है। इसका सम्बन्ध गणित ज्योतिष से है। आठ प्रकार के क्षेत्रों से यह सम्बन्धित है। सिद्धान्त एवं गोल में इसका ज्ञान परमावश्यक है।

इसलिए आइए इस इकाई में हम सभी अक्षक्षेत्रों से सम्बन्धित उसके गणितीय एवं सैद्धान्तिक पक्ष को समझने का प्रयास करते हैं।

५.२ उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- अक्ष क्षेत्र किसे कहते है।
- अक्ष क्षेत्र का साधन कैसे किया जाता है।
- अक्ष क्षेत्र के कितने प्रकार है।
- गणित ज्योतिष में अक्ष क्षेत्र का महत्व क्या है।
- गोल में अक्ष क्षेत्र की क्या भूमिका है।

५.३ अक्षक्षेत्र परिचय

अक्षक्षेत्र का सम्बन्ध ज्योतिष के गणित स्कन्ध या गोल से है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है- अक्षक्षेत्र अर्थात् अक्षांश संबंधी क्षेत्र। अक्षक्षेत्र में मुख्यतया आठ क्षेत्र बनते है। गोल में इसका विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

शंकु को नर अथवा ना भी कहते है। विषुवद् दिनार्ध पर खस्वस्तिक तथा निरक्षखस्वस्तिक का अन्तर ख अक्ष होता है। इन दोनों का अनतर करने से खस्वस्तिक तक रवि का नतांश होता है, जिसको ख अक्ष अर्थात् अक्षांश भी कहते हैं। नतांश को तीन राशि में से घटाने से शेष को उन्नतांश

कहते है। इसकी ज्या लम्ब रूप कोटि होती है, जिसको शंकु कहते हैं। अक्ष क्षेत्र का सम्बन्ध अक्षांश से है।

५.४ अक्ष क्षेत्र साधन

मूल श्लोक –

भुजोऽक्षभा कोटिरिनांगुलो ना कर्णोऽक्षकर्ण: खलु मूलमेतत्।
क्षेत्राणि यान्यक्षभवानि तेषां विद्येव मानार्थयश: सुखानाम्।।
लम्बज्यका कोटिरथाक्षजीवा भुजोऽत्र कर्णस्त्रिभुजे त्रिभुज्ये।
कुज्या भुज: कोटिरपक्रमज्या कर्णोऽग्रका च त्रिभुजं तथेदम्।।
तथैव कोटि: समवृत्तशंकुरग्रा भुजस्तद्धृतिरत्र कर्ण:।
भुजोऽपमज्या समना च कर्ण: कुज्योनिता तद्धृतिरत्र कोटि:।।
अग्रादिखण्डं कथिता च कोटिरूद्धृत्तना दो: श्रवणोपमज्या।
उद्धृत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तदच्छ्रवण: क्षितिज्या।।
खण्डं यदूर्ध्वं समवृत्तशंकोर्यत् तद्धृतेस्तावथ कोटिकर्णी।
अग्रादिखण्डं भुज एवमष्टौ क्षेत्राण्यमून्यक्षभवानि तावत्।।

अर्थात् ध्रुव क्षितिज के आसक्त होता है। निरक्ष देश से द्रष्टा जैसे-जैसे उत्तर दिशा की तरफ जाता है वैसे-वैसे उसको ध्रुव उँचा उठाता हुआ दिखाई देता है। जितने अंश ध्रुव उन्नत होता है उतनी उस स्थान की अक्षांश संज्ञा होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण की ओर विषवन्मण्डल नीचा दिखाई देता है। विषुवन्मण्डल के तिर्यक स्थिति के कारण उसके आश्रित अहोरात्र वृत्त स्वस्थान पर तिरछा होता है। अत: साक्ष देश खगोल बलन तथा तिरछे भगोल बलन के संपात से तीन ओर से क्षेत्र उत्पन्न होता है। ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की अक्ष क्षेत्र होती है। इन क्षेत्रों की उपयोगिता आचार्य भास्कर इस प्रकार कहते है –

१. अक्षभा अर्थात् पलभा भुज, १२ अंगुलात्मक शंकु कोटि तथा अक्षकर्ण से मूलभूत अक्षक्षेत्र बनता है। यह क्षेत्र ज्ञान के समान, मूलभूत क्षेत्र है, जिससे संसार की सभी मान, अर्थ यश तथा सुख आदि मूलभूत अच्छाईयाँ प्राप्त होती है।
२. दक्षिणोत्तर मण्डल और विषुवद् वृत्त के संपात से नीचे अवलम्बित क्षितिज पर्यन्त सूत्र वहाँ कोटि है। लम्ब मूल तथा भूमध्य का अन्तर जो अक्षज्या है वह भुज है। भूमध्य से लम्ब पर अग्रगामि सूत्र त्रिज्या है। वह कर्ण है। यह भी एक अक्षक्षेत्र बनता है।

३. इष्ट अहोरात्र वृत्त जहाँ क्षितिज पर लगता है उसका पूर्व स्वस्तिक से अन्तर अग्राचापांश होता है जिसकी ज्या अग्रज्या होती है। क्षितिज पर अग्रा के दोनों अग्र बिन्दु से निबद्ध सूत्र उदयास्त होता हे। अहोरात्र वृत्त तथा उन्मण्डल के संपात का पूर्वापर सूत्र जो अन्तर है वह क्रान्तिज्या है, वह यहाँ कोटि है। अग्रा कर्ण है। उसका अग्रा से अन्तर कुज्या है वह भुज है। इस प्रकार यह तीसरा अक्षक्षेत्र है।
४. अहोरात्रवृत्त और सममण्डल के संपात से नीचे लंब समवृत्तशंकु है वह कोटि है। अग्रा भुज तथा अहोरात्र वृत्त में ज्याखण्ड तद्धृति कर्ण है। इस प्रकार यह चौथा अक्षक्षेत्र है।
५. कुज्या को तद्धृति में घटाने से अहोरात्र वृत्त में ज्यार्ध कोटि है उन्मण्डल में क्रान्तिज्या है वह भुज है। समवृत्त में समशंकु कर्ण है। इस प्रकार यह पाँचवाँ अक्षक्षेत्र है।
६. अहोरात्रवृत्त तथा उन्मण्डल के संपात से अवलंग उन्मण्डल शंकु भुज है। उन्मण्डल में क्रान्तिज्या कर्ण है। उन्मण्डल शंकुमूल से पूर्वापरर सूत्र का अन्तर जो अग्रादि का खण्ड है वह कोटि है। यह छठा अक्ष क्षेत्र है।
७. उन्मण्डल शंकु कोटि है। शंकुमूल तथा उदयास्त सूत्र का अन्तर अग्रा खण्ड भुज है तथा कोटि भुज, अग्रा का अन्तर सूत्र जो कुज्या है वह कर्ण है। इस प्रकार यह सातवाँ अक्षक्षेत्र है।
८. उन्मण्डल शंकु को समशंकु में से घटाने से समशंकु का उर्ध्व खण्ड कोटि है। तद्धृति में कुज्या घटाने से तद्धृति का उर्ध्व खण्ड कर्ण है तथा अग्रादि खण्ड भुज है। यह आठवाँ अक्षक्षेत्र है।

इस प्रकार ये आठ अक्षक्षेत्र कहे गये हैं। इनसे अतिरिक्त भी अन्य बहुत से अक्षक्षेत्र बनते हैं। इन अक्ष क्षेत्रों में एक कोण अक्षांश तुलय, दूसरा अक्षांश कोटि लंबांश तुल्य तीसरा समकोण ९० अंश होता है। आप नीचे इन आठों क्षेत्रों का अवलोकन कर समझ सकते हैं-

उक्त क्षेत्र में अक्षांश तुल्य कोण के सामने की भुजा भुज, अक्षांश कोटि तुल्य कोण के सामने की भुजा कोटि तथा ९० अंश समकोण के सामने की भुजा कर्ण होती है। इन आठ अक्ष क्षेत्रों के

अतिरिक्त अहोरात्रवृत्त, विषुववृत्त के अन्य क्षितिजवृत्त, सममण्डल, याम्योत्तर वृत्त, उन्मण्डल तथा क्रान्तिवृत्त के साथ संपात से अन्य अक्ष क्षेत्र भी बनते हैं। ये सभी वृत्त क्षेत्र अक्ष, अक्षकोटि लम्बांश तथा समकोण में परस्पर संपात करते हैं। उपर्युक्त क्षेत्रों में अक्षांश के सम्मुख की भुजा भुज है।

गोल परिभाषा के अनुसार अक्षक्षेत्र -

सा भुजः कोटिरित्यत्र द्वादशांगुलसम्मिता।
तयोवर्गयुतेर्मूलं पलकर्णः स कथ्यते।।
जात्यत्रयस्रमिदं प्राज्ञैरक्षक्षेत्रमुदीरितम्।
यतोऽक्षांशसमश्चैकः कोणोऽस्त्यस्मिन् त्रिबाहुके।।

पलभा भुज और द्वादशांगुल शंकु कोटि, इन दोनों के वर्गयोगमूल को पलकर्ण या अक्षकर्ण कहते है। पलभाजन्य जात्यत्रिभुज को अक्षक्षेत्र कहते है। अक्षक्षेत्र में एक कोण अक्षांश के तुल्य होता है।

	भुजः	**कोटिः**	**कर्णः**
१.	अक्षज्या	लम्बज्या	त्रिज्या
२.	पलभा	द्वादशांगुलशंकुः	पलकर्ण
३.	शंकुतल	मध्यमशंकु	हृतिः
४.	कुज्या	क्रान्तिज्या	अग्रा
५.	अग्रा	समशंकु	तद्हृतिः
६.	अग्राखण्ड	उन्मण्डलशंकु	कुज्या
७.	उन्मण्डलशंकु	अग्रादिखण्ड	क्रान्तिज्या
८.	इष्टशंकुतल	इष्टशंकु	इष्टहृति

इस प्रकार से गोल में उक्त आठ अक्ष क्षेत्र बनते हैं। जिसे अक्ष क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। आगे अब इन्हीं आठ क्षेत्रों की गणितीय सम्बन्धों को क्रमशः समझने का प्रयास करते हैं।

आधुनिक ज्या Sine, कोज्या Cosine तथा स्पर्शज्या Tangent की परिभाषानुसार समतल त्रिभुज में – ज्या = लम्ब/कर्ण, कोज्या = आधार/कर्ण, स्पर्शज्या = लम्ब/ आधार

यहाँ अक्ष क्षेत्रों के भुज = लम्ब, तथा कोटि = आधार है। इनके आधार पर इन सभी त्रिभुज अक्ष क्षेत्रों में ये अनुपात ज्ञात करके यहाँ बताये जा रहे हैं। इस प्रकार सभी त्रिभुजों से ज्ञात अक्षज्या का मान तुल्य होगा, लम्बज्या का मान समान होगा तथा इसी प्रकार स्पर्शज्या का मान समान होगा।

$$\text{ज्या अक्षांश} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र का भुज}}{\text{अक्ष क्षेत्र का कर्ण}}\ ;\ \text{लंबज्या} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्ष क्षेत्र का कर्ण}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र का भुज}}{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}$$

अक्षक्षेत्र – प्रथम —

$$\text{अक्षांश ज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}\ ;$$

$$\text{लंब ज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}\ ;$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$$

द्वितीय —

अक्षज्या = अक्षज्या;

लंबज्या = लंबज्या ;

अक्षांश स्प.ज्या = अक्षांश स्प.ज्या

तृतीय —

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{अग्रा}}\ ;$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{क्रांति ज्या}}{\text{अग्रा}}\ ;$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

चतुर्थ—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}}$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{समशंकु}}$$

पंचम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

षष्ठम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{क्रांतिज्या}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{अग्राखण्ड}}{\text{क्रांतिज्या}};$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{अग्रादि खण्ड}}$$

सप्तम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{कुज्या}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{उन्मंड़ल शंकु}}{\text{कुज्या}};$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा खण्ड}}{\text{उन्मंडल शंकु}}$$

अष्टम —

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} ;$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} ;$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा खण्ड}}{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}$$

इन सभी में अक्षज्या, लंबज्या तथा स्प.ज्या के मान सभी अक्ष क्षेत्रों में तुल्य है। यथा—

(क) $$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{कु ज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$= \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{कु ज्या}} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$$

ये अक्ष क्षेत्र के भुज तथा कर्ण के अनुपात हैं।

(ख) $$\text{लंबज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$= \frac{\text{अग्राखण्ड}}{\text{क्रां.ज्या}} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$$

ये अक्ष क्षेत्र की कोटि तथा कर्ण के अनुपात हैं।

(ग) $$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{कु ज्या}}{\text{क्रांतिज्या}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

$$= \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{अग्रादिखंड}} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{उन्मंडल शंकु}} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$$

ये अक्षक्षेत्र के भुज तथा कोटि के अनुपात हैं। आचार्य ने इन्हीं अनुपातों की सहायता से संपूर्ण त्रिप्रश्नाधिकार के सूत्र कहे हैं।

यदि अक्षांश का मान क्रमशः ०°, ३०°, ४५°, ६०°, ९०° हो तो–

(१) अक्षांश ज्या ०° =० = $\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ होगा। अर्थात् वहाँ पर अक्ष क्षेत्र के सभी भुज = पलभा = अक्षज्या = कुज्या = अग्रा = क्रांतिज्या = उन्मंडल शंकु = अग्राखंड = अग्रादिखंड का मान शून्य होगा।

(२) यदि अक्षांश = ३०° हो तो अक्षांश ज्या ३०° = $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$; अतः $\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = $\frac{१}{२}$ अर्थात् कर्ण = २ भुज होगा। यह सभी अक्ष क्षेत्रों में होगा। अर्थात् पूर्व लिखित अक्षांश ज्या के अनुपातों में हार (Denominator) का मान अंश (Numerator) के मान से दुगुने होंगे।

कोज्या ३०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$ अतः पूर्व लिखित लंबज्या के अनुपातों में अंश×२ = $\sqrt{३}$ हार अर्थात् कोटि ×२ = $\sqrt{३}$ कर्ण होंगे।

स्प.ज्या ३०° = $\frac{१}{\sqrt{३}}$ अतः पूर्व लिखित स्प.ज्या के अनुपातों में अंश× $\sqrt{३}$ = हार अर्थात् $\sqrt{३}$ भुज = कोटि होगें।

(३) यदि अक्षांश = ६०° हो तो अक्षांश ज्या ६०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$; अतः–

$\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = $\frac{\sqrt{३}}{२}$ अर्थात सभी अक्ष क्षेत्रों में अंश (Numerator) = २ भुज तथा हार (Denominator) = कर्ण × $\sqrt{३}$ के मान तुल्य होंगे।

स्प.ज्या. ६०° = $\frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$ = $\frac{१}{\sqrt{३}}$ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में कोटि = $\sqrt{३}$ भुज होगी।

लंबज्या ६०° = $\frac{१}{२}$ = $\frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में २ कोटि = कर्ण होगी।

(४) यदि अक्षांश ९०° हो तो अक्षज्या ९०° = १ अतः

$\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = १ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में भुज तथा कर्ण समान होंगे।

लम्बज्या =९० अंश = ० अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में कोटि का मान शून्य होगा।

स्प.ज्या = ९० अंश = अनन्त अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में भुज का मान अनन्त होगा। इसी प्रकार सभी अक्षांशों के लिए ज्ञान किया जा सकता है।

त्रिज्या को पृथक्-पृथक् कोटि और भुज से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से क्रमश: लम्बज्या और अक्षज्या होती है।

बोध प्रश्न : -

1. अक्षक्षेत्र में कितने क्षेत्र होते है।

   क. ५ ख. ६ ग. ७ घ. ८
2. भुज को आधुनिक गणित जगत में क्या कहते हैं।

   क. लम्ब ख. आधार ग. कर्ण घ. लग्न
3. अक्षक्षेत्र में एक कोण होता है–

   क. समकोण ख. ५०अंश ग.१८० अंश घ.६०
4. अक्षांश किस वृत्त में होता है।

   क. क्षितिज में ख. याम्योत्तर में ग. खमध्य में घ. क्रान्ति में
5. अक्ष की ज्या को क्या कहते है–

   क. लम्बज्या ख. अक्षज्या ग. कोटिज्या घ. क्रान्तिज्या

५.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि अक्षक्षेत्र का सम्बन्ध ज्योतिष के गणित स्कन्ध या गोल से है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है- अक्षक्षेत्र अर्थात् अक्षांश संबंधी क्षेत्र। अक्षक्षेत्र में मुख्यतया आठ क्षेत्र बनते है। गोल में इसका विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

शंकु को नर अथवा ना भी कहते है। विषुवद् दिनार्ध पर खस्वस्तिक तथा निरक्षखस्वस्तिक का अन्तर ख अक्ष होता है। इन दोनों का अनतर करने से खस्वस्तिक तक रवि का नतांश होता है, जिसको ख अक्ष अर्थात् अक्षांश भी कहते हैं। नतांश को तीन राशि में से घटाने से शेष को उन्नतांश कहते है। इसकी ज्या लम्ब रूप कोटि होती है, जिसको शंकु कहते हैं। अक्ष क्षेत्र का सम्बन्ध अक्षांश से है। ध्रुव क्षितिज के आसक्त होता है। निरक्ष देश से द्रष्टा जैसे-जैसे उत्तर दिशा की तरफ जाता है वैसे-वैसे उसको ध्रुव उँचा उठाता हुआ दिखाई देता है। जितने अंश ध्रुव उन्नत होता है उतनी उस स्थान की अक्षांश संज्ञा होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण की ओर विषवन्मण्डल नीचा दिखाई देता है।

विषुवन्मण्डल के तिर्यक स्थिति के कारण उसके आश्रित अहोरात्र वृत्त स्वस्थान पर तिरछा होता है। अत: साक्ष देश खगोल बलन तथा तिरछे भगोल बलन के संपात से तीन ओर से क्षेत्र उत्पन्न होता है। ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की अक्ष क्षेत्र होती है।

५.६ पारिभाषिक शब्दावली

अक्ष क्षेत्र – अक्षांश सम्बन्धी क्षेत्र।

अष्ट - आठ

समकोण – 90 अंश का कोण

भुज – लम्ब

कोटि – आधार

अक्षभा – अक्षांश की छाया

५.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. क
3. क
4. ख
5. ख

५.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तिशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टीका – पं. सत्यदेव शर्मा
2. सूर्यसिद्धान्त – आर्ष ग्रन्थ:, टीका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय
3. गोल परिभाषा – टीका – डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय

५.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. गोल परिभाषा
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. सिद्धान्ततत्वविवेक

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. अक्षक्षेत्र किसे कहते है? स्पष्ट कीजिये।
2. गोल परिभाषा के अनुसार अक्षक्षेत्र का परिचय दीजिये।
3. अक्षक्षेत्र का साधन कीजिये।
4. क्षेत्रद्वारा अक्षक्षेत्र को प्रदर्शित कीजिये।
5. गणित में अक्षक्षेत्र का क्या योगदान है?

खण्ड - 2
प्रमुख ज्योतिर्विदों का जीवन परिचय

इकाई - १ आचार्य लगध, आर्यभट्ट एवं वराहमिहिर

इकाई की संरचना

१.१ प्रस्तावना
१.२ उद्देश्य
१.३ ज्योतिष शास्त्र की प्रतिष्ठा
१.४ ऋषि लगध
१.४.१ लगध ऋषि का परिचय
१.५ वेदांग ज्योतिष
१.५.१ वेदांग ज्योतिष की विशेषताएँ
१.५.२ वेदांग ज्योतिष का स्वरूप
१.५.३ ऋक ज्योतिष
१.५.३.१ युग, संवत्सर
१.५.३.२ नक्षत्र अयन और मास
१.५.३.३ पल आदि मान
१.५.४ याजुष ज्योतिष
१.५.४.१ सौर वर्ष और ऋतु
१.५.४.२ नक्षत्रों की विशिष्ट संज्ञायें
१.५.५ अथर्व ज्योतिष
१.५.५.१ तिथि और वार
१.५.५.२ मुहूर्त्त विचार
१.५.५.३ नक्षत्र बल
१.६ आर्यभट्ट
१.६.१ आर्यभट्ट परिचय
१.६.२ आर्यभट्टीयम्
१.६.३ आर्यभट्टीयम् का वैशिष्ट्य
१.६.३.१ अंक संज्ञा
१.६.३.२ भूभ्रमण

१.६.३.३ युग पद्धति
१.७ वराहमिहिर
१.७.१ वराहमिहिर का काल
१.७.२ वराहमिहिर का परिचय
१.७.३ त्रिस्कन्ध मर्मज्ञ
१.७.४ कर्तृत्व
१.७.५ पंचसिद्धान्तिका
१.७.६ वृहत्संहिता
१.७.७ वृहज्जातक
१.८ सारांश
१.९ पारिभाषिक शब्दावली
१.१० बोध प्रश्नों के उत्तर
१.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
१.१२ निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! ज्योतिष-शास्त्र के एम.ए. तृतीय सेमेस्टर (MAJY-603) की तृतीय पत्र का द्वितीय खण्ड में आपका स्वागत है। इस खण्ड में हम भारतीय-ज्योतिष-शास्त्र की समृद्ध परम्परा के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे। जैसा कि आप सभी को अवगत है कि वेद-पुरुष के षट् अंग क्रमश: - व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा, ज्योतिष, कल्प और छन्द हैं। इन षट् अङ्गों में ज्योतिष, नेत्र के रूप में परिगणित है। क्या आपने कभी सोचा है कि ज्योतिष को वेद-पुरुष का नेत्र ही क्यूं कहते हैं? ..... बन्धुओं! जिस प्रकार नेत्र सभी भौतिक पदार्थों को देखने का साधन है, जिसके अभाव में नेत्रहीन मनुष्य के लिए सम्पूर्ण जगत् अन्धकारमय है, ठीक उसी प्रकार ज्योतिष भावी घटनाओं को देखने या जानने का साधन है जिसके अभाव में ज्योतिष-ज्ञान-विहीन मनुष्य भावी जीवन-सम्बन्धी अज्ञानरूपी अन्धकार से युक्त रहता है।

ज्योतिष, व्याकरण आदि इन सभी वेदाङ्गों की स्वतन्त्र सत्ता यद्यपि वेदोत्तर काल में अस्तित्व में आई तथापि इसके पूर्व वैदिक काल में ही अन्य अङ्गों की भांति ज्योतिष-शास्त्रीय समूल-बीज यत्र-तत्र वैदिक वाङ्मय में प्रकीर्ण अवस्था में थे, जिनका कालान्तर में प्ररोहण व पल्लवन हुआ। संक्षेप में, अन्य शास्त्रों की भांति ज्योतिष की प्रगति भी अनेकों ऋषियों, मुनियों और आचार्यों के द्वारा समय-समय पर स्थापित सिद्धातों और नियमों के द्वारा हुई। ज्योतिष की इस ऐतिहासिक परम्परा का वर्णन अनेकों ग्रंथकारों ने किया है जिनमें बाल गंगाधर तिलक, सुधाकर द्विवेदी, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, गोरख प्रसाद आदि प्रमुख हैं। ऐतिहासिकता का अध्ययन न केवल उस शास्त्र के विद्वानों और शास्त्र के क्रमिक-परिवर्तन को व्याख्यायित करता है अपितु समाज में उस शास्त्र के महत्त्व, और उसकी प्रासङ्गिकता को रेखांकित भी करता है।

इस खण्ड के पाँचों इकाईयों में काल-क्रम से ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्यों के विषय में आप अध्ययन करेंगे। इस प्रथम इकाई में ऋषि लगध, आचार्य वराहमिहिर एवं सिद्धान्त ज्योतिष के आचार्य आर्यभट्ट के विषय में चर्चा की जाएगी।

१.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्योतिष के तीनों स्कन्धों को निरूपित कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- भारतीय ज्योतिष के आरंभिक इतिहास का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे।
- वेदांगज्योतिष के स्वरुप को प्रकट करने में समर्थ हो सकेंगे।

- ऋक्ज्योतिष, याजुषज्योतिष और अथर्वज्योतिष में वर्णित विषयों को बता सकने में समर्थ होंगे।
- आर्यभट्ट और उनके ग्रन्थ का स्वरूप को समझा सकने में कुशल हो सकेंगे।
- वराहमिहिर और उनकी कृतियों के वर्णन में निपुण हो सकेंगे।

१.३ ज्योतिष-शास्त्र की प्रतिष्ठा -

मित्रों, संस्कृत वाङ्मय की समृद्धि और उसकी वैज्ञानिकता की प्रतिष्ठा में ज्योतिष-शास्त्र की महती भूमिका रही है । जैसा कि आप जानते हैं वेदाङ्ग होने के कारण ज्योतिष की उत्पत्ति वेदों से मानी जाती है। ऋग्वेद, तैत्तिरीयोपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण आदि वैदिक वाङ्मय में पग-पग पर ज्योतिषीय अवधारणाएं, संकल्पनाएँ एवं सिद्धान्त कहीं पर सूत्र रूप में (अप्रत्यक्षत:) तो कहीं पर विस्तृत रूप में (प्रत्यक्षत:) दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ एक शङ्का आपके मन में यह होती होगी कि ऋषियों ने एकत्र इन ज्योतिषीय विषयों की चर्चा क्यों नहीं की? और ज्योतिष-शास्त्र को एक स्वतन्त्र रूप क्यूं नहीं दिया? वस्तुत: इन दोनों ही प्रश्नों का एक ही वाक्य में समाधान यह है कि तत्कालीन ऋषि का उद्देश्य किसी शास्त्र-विशेष का प्रवर्तन करना नहीं था अपितु उसका लक्ष्य प्रकृति या यूं कहें कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड व जीव को एक समान और उस परमपिता परमेश्वर की विच्छित्ति मानते हुए प्रत्येक प्राकृतिक तत्त्व की देवत्व के रूप में स्तुति-गान करना तथा इस क्रम में उनके स्वरूप, गुण-धर्म, कार्य और पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करना था। अत: इन विषयों के उपस्थापक आचार्यों ने प्रसङ्गवशात् नक्षत्रों, ग्रहों, ग्रहण, मास, तिथि आदि ज्योतिषीय तत्त्वों की चर्चा स्तुति-गान के क्रम में की। हाँ... कालान्तर में ब्राह्मण ग्रन्थों और परवर्त्ती वैदिक साहित्य में ज्योतिषीय विषयों को विस्तार रूप में प्रस्तुत किया गया।

काल-क्रम से अनेकों ऋषियों, आचार्यों ने सङ्क्रान्ति, ग्रहण, ग्रह-युति, नक्षत्र, मुहूर्त्त आदि पर अपने-अपने सिद्धान्त प्रकट किये । आपको यह इसीलिये ज्योतिष के १८ प्रवर्तक आचार्य माने गए, जो कि इस प्रकार हैं –

सूर्य: पितामहो व्यास: वशिष्ठोऽत्रि: पराशर: ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा ॥
लोमश: पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगु: ।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिषशास्त्रप्रवर्तका: ॥

इनमें सूर्य और पितामह को सनातन परम्परा में ऋषि न मानकर देव माना गया है। शेष ऋषि हैं। ये हैं व्यास, वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अङ्गिरा, लोमश, पौलिश, च्यवन,

यवन, भृगु और शौनक।

यहाँ आपके मन में यह जिज्ञासा होगी इतने आचार्यों के होने के बावजूद वेदोत्तर काल से लेकर वेदांग काल तक के बीच में ज्योतिष का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ आज तक क्यूं नहीं प्रकाश में आया? इसके दो प्रमुख कारण हैं।

पहला तो यह है कि वैदिक या वेदोत्तर काल मुख्यतया प्रवचन-काल रहा है। प्रसङ्गवशात् आचार्यों ने अपने मत शिष्यों के सामने रखे जिन्होनें उन मतों को आगे बढ़ाया। इस प्रकार कर्णाकर्णि परम्परा द्वारा इन ऋषियों द्वारा प्रवर्तित व प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर ये आचार्य ज्योतिष-शास्त्र के प्रवर्तक तो माने गए किन्तु, स्वयं इन आचार्यों या उनके परम्परागत शिष्यों द्वारा शास्त्राध्ययन में लेखन-विधि की उपेक्षा के कारण तत्तद्विषयक शास्त्रीय-ग्रन्थों का अभाव रहा। कालान्तर में स्वतन्त्र रूप से शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना बहुत बाद में प्रारम्भ हुई। तब निकट पूर्ववर्ती आचार्यों एवं शास्त्र-विशेष के विशिष्ट आचार्यों यथा- ज्योतिषशास्त्र में पाराशर, जैमिनि इत्यादि के मतों के संकलन रूप ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें अतिप्राचीन आचार्यों के मतों का यत्र-तत्र समावेश किया गया।

दूसरा प्रमुख कारण यह है कि भारतवर्ष पिछले लगभग दो हज़ार वर्षों से आक्रान्ताओं से दुष्प्रभावित रहा। जिन्होनें समय-समय पर भारत की संस्कृति को बलात् समाप्त करने के उद्देश्य से संस्कृति के आधारभूत शास्त्रों और शास्त्र-संरक्षण में संलग्न संस्थाओं के विनाश का कार्य किया। इस कारण से अनेकों ग्रन्थ विलुप्त हो गए। जो बचे उनमें भी कई ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों के अंश यत्र-तत्र प्रकीर्णित अवस्था में होने से व अन्य कारणों से अपूर्ण अवस्था में प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त कई अन्य प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कारण रहे जिन्होंने भारत की अमूल्य शास्त्रीय परम्परा को और इस क्रम में भारतीय-ज्योतिष-परम्परा को अपूरणीय क्षति पहुंचाई।

....खैर मित्रों! इससे हुआ यह कि ऊपर परिगणित भारतीय-ज्योतिष-परम्परा के अनेकों प्रवर्तक आचार्यों के सिद्धान्त, स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप न ले सके। ...हां लेकिन इतना ज़रूर है कि उपलब्ध शास्त्रीय ग्रन्थों में इन आचार्यों के सिद्धान्त, नियम आदि मूल ग्रन्थ या टीकाओं में प्रसंगवशात यत्र-तत्र लिखित या वर्णित मिलते हैं जो इन आचार्यों के अस्तित्त्व व उनके प्रवर्तकत्व को प्रमाणित करते हैं।

१.४ ऋषि लगध -

प्रिय अध्येता! अभी तक हमने वैदिक काल के बाद और लगध मुनि के पहले की भारतीय ज्योतिष की पृष्ठभूमि पर चर्चा की। ...आइए अब हम इस अध्याय के अगले प्रतिपाद्य विषय त्रषि

लगध की चर्चा करते हैं।

लगध मुनि का नाम सुनते ही कई प्रश्न मस्तिष्क में आते हैं। लगध ऋषि कौन थे? प्रवर्तक आचार्यों में उनका नाम न होने पर भी भारतीय ज्योतिष में उनके अध्ययन का कारण क्या है? या ज्योतिष-शास्त्र को लगध मुनि की देन क्या है?

आइए एक-एक करके इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढते हैं।

१.४.१ लगध ऋषि का परिचय -

प्राचीन भारतीय परम्परा में प्राय: आचार्यों ने अपनी अहंता बुद्धि को सदा ही पृष्ठ में रखा है। यही कारण है बहुत सारे शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रणेताओं का परिचय नहीं मिलता है। फिर यहाँ तो अनुपम विनय का प्रदर्शन करते हुए यद्यपि महात्मा लगध ने स्वयं का कोई परिचय नहीं दिया है तथापि ऋक्-ज्योतिष के द्वितीय श्लोक में उनका कुछ परिचय प्राप्त होता है।

प्रणम्य शिरसा ज्ञानम् अभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मन: ।।

(ऋक्ज्योतिषम्, श्लोक 2)

अर्थात् सरस्वती देवी का अभिवादन करके और सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए महात्मा लगध के (द्वारा उपस्थापित) काल-ज्ञान को कहूंगा।

लगध मुनि सम्बन्धी एक मात्र परिचयात्मक इस श्लोक से यह पता चलता है कि यद्यपि महात्मा लगध ज्योतिष शास्त्र के आचार्य रहे हैं तथापि 'वेदाङ्ग-ज्योतिष' के रचयिता वह स्वयं नहीं अपितु उनका कोई शिष्य है। तथा सम्भवत: लगध के ही प्रतिपादित सूत्रों का संकलन 'ऋक्ज्योतिष', 'याजुष ज्योतिष' एवं 'अथर्व ज्योतिष' इत्यादि नाम से उनके शिष्यों ने किया। इसके अतिरिक्त लगध मुनि के विषय में अन्य कोई प्रामाणिक सूचना नहीं मिलती है क्यूंकि संस्कृत वाङ्मय में इस नाम के किसी आचार्य का अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता है। पाश्चात्य विद्वान 'लगध' को 'लगड़' या 'लाट' कहते हैं, जिससे उनका समय पांचवी शताब्दी के आस-पास आता है जो कि सर्वथा निराधार है। इसका कारण ग्रन्थोक्त उत्तरायण-बिन्दु की स्थिति है जो खगोलीय गणना के

आधार पर लगध का काल १४००-१५०० ईसा पूर्व निश्चित करता है।

जहां तक प्रश्न लगध के महत्त्व का है, वह वेदोत्तर काल और सिद्धांत काल के मध्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं क्यूंकि इन दोनों कालों के मध्य सिर्फ उनका ही नाम स्वतन्त्र ग्रन्थ के प्रवर्तक के रूप में इतिहास में उल्लिखित है। तो फिर यह प्रश्न मन में उठता है कि ज्योतिष के प्रवर्तक आचार्य के रूप में लगध का नाम क्यूं नहीं आता है?

इस प्रश्न के कई उत्तर हैं। पहला तो यह कि लगध का काल पूर्वोक्त परिगणित प्रवर्तक आचार्यों से बाद का है। दूसरा, 'वेदांग ज्योतिष' का कोई भी विषय किसी नए ज्योतिषीय सिद्धान्त का प्रवर्तन नहीं करता है। इसका ऋक् एवं याजुष् भाग तो पञ्चाङ्ग-गणित (तिथि, वार, नक्षत्र, संवत्सर, अधिमास, अयन आदि) का जबकि अथर्व-ज्योतिष फलित-भाग का संक्षिप्त व सूत्र-रूप है।

जहां तक प्रश्न लगध के शिष्य का है, वेदांग ज्योतिष के संस्कृत टीकाकार डा. शाम शास्त्री के अनुसार, प्रथम श्लोक में उक्त 'शुचि' शब्द लगधाचार्य के शिष्य 'शुचि' का वाचक है –

इह तावज्ज्योतिर्विदो लगधाचार्यस्य शिष्यश्शुचिर्नाम कश्चन ऋषिः...... ।

जबकि अन्य 'शुचि' शब्द का अर्थ पवित्रता लेते हैं ।....जो भी हो, यह तो तय बात है कि वेदांग-ज्योतिष के इस वर्तमान स्वरुप का प्रणयन लगध मुनि के ही शिष्य-परम्परा के किसी आचार्य ने किया है ।

जैसा कि स्पष्ट है 'वेदांग-ज्योतिष' ही महात्मा लगध का ज्योतिष-शास्त्र को अमूल्य देन है तो आइए, इस ग्रन्थ के विषय में कुछ चर्चा करें।

१.५ वेदाङ्ग ज्योतिष -

मित्रों! आपके मन में यह जिज्ञासा उठना स्वाभाविक है कि जब 'वेदाङ्ग-ज्योतिष' संक्षिप्त व सूत्र-रूप है तब फिर भारतीय ज्योतिष के इतिहास में इसका महत्त्व क्या और क्यूं है?

१.५.१ वेदाङ्ग ज्योतिष की विशेषताएं -

वेदाङ्ग ज्योतिष के महत्त्व को समझाने के लिए उसकी विशेषताएं जानना अधिक प्रासंगिक होगा अत: आइए पहले इसकी विशेषताओं को बिन्दुश: रेखांकित करने का प्रयास करें।

१. यह वर्तमान में उपलब्ध, संस्कृत भाषा में निबद्ध, सर्वाधिक प्राचीन ज्योतिष-शास्त्रीय ग्रन्थ है ।
२. यह ज्योतिष के स्कन्धात्मक पक्ष को मूर्तरूप देने का प्रथम प्रयास है। जैसा कि आपको अवगत होगा कि गणित (सिद्धान्त), फलित (होरा) एवं संहिता इन तीन स्कन्धों पर आधारित होने के कारण ज्योतिष 'त्रिस्कन्धात्मक' कहा जाता है । यह ग्रन्थ 'ऋक-ज्योतिष' (आर्च-ज्योतिष), एवं 'याजुष-ज्योतिष' एवं 'अथर्व-ज्योतिष' (आथर्वण ज्योतिष) का समेकित रूप है। इस ग्रन्थ में सिद्धान्त या गणित-स्कन्ध से सम्बन्धित पंचांग के विविध अवयवों की गणना हेतु 'ऋक-ज्योतिष' (आर्च-ज्योतिष) एवं 'याजुष-ज्योतिष' का प्रणयन तथा फलित स्कन्ध से सम्बन्धित विषयों के उपस्थापन के लिए 'अथर्व-ज्योतिष' का प्रणयन किया गया है ।

३. यह प्रथम स्वतन्त्र ज्योतिषीय ग्रन्थ है जिसमें वेदाङ्ग के रूप में ज्योतिष की चर्चा आई है और उसको वेदाङ्गों में सर्वाधिक महत्त्व का बताया गया है।

४. यह वर्त्तमान में उपलब्ध संभवत: एक मात्र वेदोत्तरकालीन ज्योतिषीय ग्रन्थ है जिसमें सूत्र-रूप में पंचांग के अवयवों का साधन बताया गया है।

५. यह प्रथम ग्रन्थ है जिसमें सौर-चान्द्रात्मक-पंचांग साधन की भारतीय पद्धति का परिचयात्मक ज्ञान मिलता है।

६. तत्कालीन उत्तरायण एवं दक्षिणायन बिन्दु की स्थिति को बताने वाला यह सम्भवत: प्रथम स्वतन्त्र ज्योतिषीय ग्रन्थ है।

७. यह प्रथम स्वतन्त्र ज्योतिषीय ग्रन्थ है जिसमें नक्षत्रों और उनके देवताओं का आद्यक्षर से संकेत किया गया है। कालान्तर में ज्योतिषियों ने पद्य-रचना में इस पद्धति का बहुत प्रयोग किया।

इसके अतिरिक्त अनेकों अन्य विशेषताएं इस ग्रन्थ की हैं जो इसके महत्व को स्थापित करती हैं।

१.५.२ वेदांग ज्योतिष का स्वरुप –

प्रिय अध्येता! जैसे कि पूर्व में ही चर्चा हुई, वेदांग ज्योतिष 'ऋक् ज्योतिष', 'याजुष् ज्योतिष' एवं 'अथर्व ज्योतिष' के सम्मिलित रूप को कहते हैं। यद्यपि मुख्यत: ऋक और याजुष का ही सम्मिलित रूप वेदांग ज्योतिष इस नाम से व्यवहृत है तथापि अथर्व ज्योतिष के नाम से प्राप्त अन्य ग्रन्थ को भी वेदांग ज्योतिष के रूप में कालांतर में स्वीकार करके उसका भी अध्ययन इसके अंतर्गत किया जाने लगा। 'ऋक् ज्योतिष' में ३६ श्लोक हैं और 'याजुष् ज्योतिष' में ४४ श्लोक हैं। इन दोनों में विषय तो प्रायः एक ही है किन्तु शब्दों और पाठ-भेदों का अंतर है। अथर्व ज्योतिष में १६२ श्लोक पाए जाते हैं जो कि १४ प्रकरणों में विभक्त हैं। अत: इसके स्वरूप को समझने के लिये इनकी भी थोड़ी-थोड़ी चर्चा यहाँ आवश्यक है।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) ज्योतिष का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद् में मिलता है ( )

(ख) ब्राह्मण ग्रंथों में ज्योतिष के विषय नहीं मिलते हैं ( )

(ग) ज्योतिष-शास्त्र के १५ प्रवर्तक आचार्य आने गए हैं ( )

(घ) ऋक्ज्योतिष और याजुषज्योतिष में विषय-गत साम्य नहीं है ( )

(ङ) अथर्वज्योतिष में मुख्यत: फलित के विषय वर्णित हैं ( )

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ वेदाङ्गज्योतिष के रचयिता के विषय में लिखें।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) खगोलीय गणना के आधार पर लगध का काल ___________ है।

(ख) _____________ ने शुचि को लगध का शिष्य माना है।

(ग) ऋक्ज्योतिष में _________ श्लोक हैं।

(घ) आथर्वणज्योतिष में ________ प्रकरण हैं।

(ङ) ज्योतिष-शास्त्र ________ स्कंधों में विभक्त है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ वेदांग ज्योतिष की ४ विशेषताएं लिखिए।

____

____

____

____

१.५.३ ऋक् ज्योतिष –

जैसा कि पूर्व में ही कहा कि ऋक् ज्योतिष में ३६ श्लोक हैं। इसमें युग, अयन, वर्ष, मास, ऋतु, दिनमान, पर्वगण, पर्वसम्मित नक्षत्र, पल इत्यादि मान, लग्न, ग्रह-गति आदि विषयों का समावेश किया गया है।

१.५.३.१ युग, संवत्सर, अयन और मास –

मित्रों! हालांकि 'युग' इस शब्द से सामान्यत: सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग एवं कलियुग का ही बोध होता है जिनका ज्योतिषीय मान कई-कई वर्षों का होता है किन्तु इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य में वर्णित पञ्चवर्षीय युग का उल्लेख ऋक् ज्योतिष में मिलता है –

पञ्च संवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम् ।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचि: ।।

(ऋक्ज्योतिषम्, श्लोक 1)

अर्थात् दिवस, ऋतु, अयन और मास जिसके अङ्ग हैं ऐसे पञ्चसंवत्सरमय युगाध्यक्ष प्रजापति को शिरसा प्रणाम कर मैं शुचि (शुद्ध होता हुआ) ।

किन्तु पञ्च संवत्सरों के नाम यहाँ नहीं आए हैं। सोमाकर ने ८वें श्लोक की टीका में गर्ग मुनि के वचन को उद्धृत करते हुए इनके नाम दिए हैं जो क्रमश: इस प्रकार हैं –

१. संवत्सर, २. परिवत्सर, ३. इदावत्सर, ४. अनुवत्सर और ५. इद्वत्सर। इन संवत्सरों के गर्ग मुनि प्रोक्त देवता क्रमश: १. अग्नि, २. आदित्य, ३. वायु, ४. चन्द्रमा और ५. मृत्यु हैं।

अयन की स्थिति को स्पष्ट करते हुए ऋक ज्योतिष कहता है –

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रवणयो: सदा।।

(ऋक्ज्योतिषम्, श्लोक ६)

अर्थात् श्रविष्ठा (धनिष्ठा) के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर मुड़ते हैं और सार्प (आश्लेषा) के आधे पर दक्षिण की ओर। सूर्य सर्वदा माघ और श्रावण (मासों में क्रमश: उत्तर और दक्षिण की ओर मुड़ता है)।

इसके अतिरिक्त ५वें श्लोक में कहा है कि जब सूर्य और चन्द्रमा धनिष्ठा नक्षत्र में एकत्र प्राप्त होते हैं तब युग, माघ (मास), तपस् (वसन्त) ऋतु, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण का आरम्भ होता है । इस प्रकार वर्ष का आरम्भ माघ शुक्ल पक्ष से और समाप्ति पौष कृष्ण पक्ष की अमावास्या से होती है।

चान्द्र मासों के अतिरिक्त सौर मासों और सावन मासों के भी ज्ञान का पता चलता है। अधिक मास के स्वरूप और उसके साधन की विधि भी ऋक् ज्योतिष में उपलब्ध है।

१.५.३.२ नक्षत्र –

इसके अतिरिक्त नक्षत्रों के नाम और देवता का उल्लेख उनके अक्षरों के आदि या अन्त्य अक्षरों के आधार पर किया गया है।

जौद्राग: खेश्वेहीरोषाचिम्मूषण्य: सूमाधाण:।
रे मृघा स्वापोऽज: कृष्य: हज्येष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गै:।।

(ऋक्ज्योतिषम्, श्लोक १८)

जौ (अश्वयुजौ = अश्विनी), द्रा (आर्द्रा), गः (भगः = पूर्वाफाल्गुनी), खे (विशाखा), श्वे (विश्वेदेवा = उत्तराषाढा), हिः (अहिर्बुद्ध्न्य = उत्तरभाद्रपद्), रो (रोहिणी), षा (आश्लेषा), चित् (चित्रा), मू (मूल), षा (शतभिषा), ण्यः (भरणी), सू (पुनर्वसु), मा (अर्यमा = उत्तरफाल्गुनी), धा (अनुराधा), णः (श्रवण), रे (रेवती), मृ (मृगशिरा), घा (मघा), स्वा (स्वाती), पः (अपः = पूर्वाषाढा), अजः (अज = पूर्वभाद्रपद्), कृ (कृत्तिका), ष्यः (पुष्य), ह (हस्त), ज्ये (ज्येष्ठा), ष्ठा (श्रविष्ठा = धनिष्ठा)।

यद्यपि इस श्लोक में २७ नक्षत्रों का वर्णन है तथापि इनका क्रम व्यवस्थित नहीं है क्यूंकि यह क्रम पर्वों (विशेष संज्ञा) में उन नक्षत्रों की स्थिति का बोध कराता है।

१.५.३.३ पल आदि मान –

ऋक्ज्योतिष में पल आदि काल-मापन की इकाइयों का भी वर्णन प्राप्त होता है –

नाडिके द्वे मुहूर्तस्तु पञ्चाशत्पलमाषकम्।
माषकात् कुम्भको द्रोणः कुटपैर्वर्धते त्रिभिः ॥

(ऋक्ज्योतिषम्, श्लोक १७)

१ कुडव = ३-१/८ पल; ३ कुडव = ९-३/८ पल; ४ कुडव = १ प्रस्थ

१ प्रस्थ = १२-१/२ पल; ४ प्रस्थ = ५० पल = १ आढक

४ आढक = १ द्रोण या २०० पल

१ नाडिका = (१ द्रोण – ३ कुडव) = १९०-५/८ पल

२ नाडिका = १ मुहूर्त; ३० मुहूर्त = ६०३ कला = १ दिन

१.५.४ याजुष् ज्योतिष –

इसमें 'ऋक् ज्योतिष' के ही श्लोक हैं। केवल १३-१४ श्लोकों में ही भिन्नता है। ऋक्ज्योतिष के ३६ में से ३० श्लोक किञ्चिद् पाठभेद के साथ यहाँ सम्मिलित किये गए हैं। 'याजुष् ज्योतिष' में वर्णित विषय ऋक्ज्योतिष से भिन्न नहीं हैं। इसमें पर्व-तिथि का साधन, सावन-चान्द्र-नाक्षत्र मास का कथन, चान्द्र-सौर दिन, अधिमास आदि का वर्णन है।

१.५.४.१ सौर वर्ष और ऋतु –

ग्रन्थ के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय से ही चान्द्र वर्ष की अपेक्षा सौर वर्ष का ही प्रचलन अधिक था। २६ वें श्लोक में सौर वर्ष का प्रमाण भी बताया गया है –

त्रिंशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः षट् चर्तवोऽयने ।

मासा द्वादश सौराः स्युः एतत्पञ्चगुणं युगम् ।।

(याजुष् ज्योतिषम्, श्लोक २८)

अर्थात् त्रिंशत् (३००) सषट्षष्टिः (६६) अह्नां (दिनों का) एक अब्द (वर्ष/सौर वर्ष) होता है, जिसमें षट् ऋतुएं, अयने (२ अयन), द्वादश सौर मास होते हैं। एतत् (इन सब दिनादियों को) पञ्च गुणित करने पर एक युग में इनकी संख्या का ज्ञान होता है।

१.५.४.२ नक्षत्रों की विशिष्ट संज्ञाएं –

ऋक् (आर्च) से भिन्न वर्ण्य विषयों में नक्षत्रों की संज्ञाएं मुख्य हैं।

उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणाश्वयुक्।

क्रूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलं यमस्य तत्।।

(याजुष् ज्योतिषम् श्लोक ३३)

अर्थात् आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवण और अश्विनी ये सभी 'उग्र नक्षत्र' हैं । मघा, स्वाती, ज्येष्ठा, मूल और यम ये सभी क्रूर नक्षत्र हैं।

१.५.५ अथर्व ज्योतिष –

'अथर्व ज्योतिष' या 'आथर्वण ज्योतिष' पितामह-कश्यप-संवाद रूप है। यह १४ प्रकरणों और १६२ श्लोकों में विभाजित है। विषय की दृष्टि से इसमें ज्योतिष के फलित पक्ष का अधिक निरूपण हुआ है। यह पूर्वोक्त दोनों की अपेक्षा नवीन प्रतीत होता है। पी.वी. काणे इसका प्रणयन काल द्वितीय या प्रथम शताब्दी ई.पू. मानते हैं। इसमें प्रतिपादित विषय संक्षेप में इस प्रकार से है।

१.५.५.१ तिथि और वार -

इसमें तिथि, वार के साथ-साथ नक्षत्र और करण का भी उल्लेख मिलता है। तिथियों के नन्दा, भद्रा तथा रिक्ता आदि पांच नाम प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही वारों के भी नाम यहाँ प्राप्त होते हैं –

आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुधबृहस्पती।

भार्गवः शनैश्चरैश्चैव एते सप्त दिनाधिपाः।।

(अथर्व ज्योतिष १०३)

तिथियों के करणों की भी चर्चा है। करणों के शुभाशुभ एवं मुख-पुच्छादि का भी विचार प्राप्त होता है। तिथि, नक्षत्र, वार और करणों की गुणवत्ता बताते हुए उत्तरोत्तर उनके बलाधिक्य की भी बात कही

गयी है –

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।
वारश्चाष्टगुण: प्रोक्त: करणं षोडशान्वितम्।।

(अथर्व ज्योतिष ९०)

१.५.५.२ मुहूर्तविचार –

अथर्व ज्योतिष में मुहूर्तों की संख्या १५ बताई गयी है। बारह अंगुल के शंकु की छाया के भिन्न-भिन्न परिमाण ही इन मुहूर्तों की अवधि हैं। यदि शंकु छाया ९६ अंगुल के लगभग है तो वह काल-खण्ड (मुहूर्त) 'रौद्र' कहलाता है। ६० अंगुल छाया जब हो तब 'श्वेत' नामक मुहूर्त, १२ अंगुल परिमाण में 'मैत्र' संज्ञक मुहूर्त, ६ अंगुल प्रमाण में 'सारभट' मुहूर्त, ५ अंगुल में 'सावित्र', ४ अंगुल में 'वैराज', ३ अंगुल में 'विश्वावसु' मुहूर्त होता है। मध्याह्न के बाद उपर्युक्त छाया के उत्क्रम से मुहूर्तों का ज्ञान किया जाता है। मध्याह्न में छाया का मान शंकुमूल में आने पर 'अभिजित्' नामक शुभ मुहूर्त होता है। मुहूर्तों के अनुरूप उनके शुभाशुभ फल समझना चाहिए।

१.५.५.३ नक्षत्र (तारा) बल –

वस्तुत: वैदिक ज्योतिष और वेदोत्तर ज्योतिष नक्षत्र-प्रधान थी। इसका प्रमाण आथर्वण ज्योतिष में भी स्पष्टतया मिलता है। इसमें ३-३ नक्षत्रों का वर्ग बनाकर उनकी 'जन्म', 'सम्पत्', 'विपत्', 'क्षेम्य', 'प्रत्वर', 'साधक', 'नैधन', 'मैत्र', ' अतिमैत्र' ये संज्ञाए पढी गयी हैं, जिनका फल उनके नाम के अनुरूप बताया गया है –

जन्म सम्पत्विपत् क्षेम्य: प्रत्वर: साधकस्तथा।
नैधनो मित्रवर्गश्च परमो मैत्र एव च।।

(अथर्व ज्योतिष १०३)

इसके अतिरिक्त जन्मनक्षत्र से १०वां नक्षत्र 'कर्म', १९वां 'गर्भाधानक' कहा गया है।

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) वेदांग ज्योतिष में युग १०० वर्षों के माने गए हैं।)
(ख) अनुवत्सर सम्वत्सरों का एक प्रकार है। ( )
(ग) चित्रा का दूसरा नाम श्रविष्ठा है। ( )
(घ) 'जौ' का तात्पर्य अश्विनी नक्षत्र है। ( )
(ङ) १२ अङ्गुल छाया होने पर 'सारभट' नामक मुहूर्त होता है। ( )

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ वेदाङ्गज्योतिष में वर्णित युग के सम्वत्सरों और उनके देवताओं के नाम लिखें।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) 'द्रा' से कौन सा नक्षत्र प्रकट होता है ?

(ख) एक मुहूर्त में कितनी नाडिकाएं होती हैं ?

(ग) अथर्वज्योतिष में मुहूर्तों की संख्या कितनी बताई गयी है?

(घ) कितनी अंगुल छाया होने पर 'वैराज' नामक मुहूर्त होता है?

(ङ) जन्मनक्षत्र से १०वें नक्षत्र की क्या संज्ञा है ?

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ 'प्रपद्येते श्रविष्ठादौ'....... श्लोक का अर्थ लिखिए।

____

____

____

____

१.६ आर्यभट्ट –

प्रिय अध्येता! अभी तक हमने वेदांग ज्योतिष के विषय में चर्चा की। किन्तु, यहाँ से हम ज्योतिषवाङ्मयेतिहास के उस पड़ाव पर चलेंगे जहां से स्वतन्त्र ज्योतिषीय ग्रन्थों का वर्त्तमान में अस्तित्व मिलता है। इसमें यदि आप गौर करेंगे तो पाएंगे कि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त-स्कन्ध का विकास बड़ी ही तेज़ी से हुआ और तत्कालीन विद्वानों विशेषकर गणित के पंडितों ने इस स्कन्ध में विशेष रुचि प्रदर्शित की। इसीलिये कई इतिहासकारों ने इसे 'आदि-सिद्धान्त-काल' भी कहा है। इस काल के प्रमुख अग्रगण्यों में आर्यभट्ट का नाम शीर्ष पर समादृत है।

मित्रों! आपको स्मरण होना चाहिए कि भारत-सरकार द्वारा भेजे गए उपग्रहों में से एक का नाम इसी महान गणितज्ञ और खगोलविद् के नाम पर रखा गया है। तो आइए, आर्यभट्ट और उनके कर्तृत्व की कुछ चर्चा की जाए।

१.६.१ **आर्यभट्ट का परिचय –**

आर्यभट्ट ने स्वयं का कोई विशेष एवं विस्तृत परिचय नहीं दिया है। आर्यभट के द्वारा स्वयं दी गयी जानकारी के अनुसार उनका जन्म गुप्त काल (३२०ई. – ७४०ई.) के मध्य ४७६ ईस्वी में हुआ। आर्यभट कुसुमपुर के निवासी थे। यहीं पर उन्होंने 'आर्यभटीयम्' नामक ग्रन्थ की रचना की –

आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्।।

(आर्यभटीयम्, गणितपाद, १)

कुसुमपुर पटना या पाटलिपुत्र का ही प्राचीन नाम था।

१.६.२ आर्यभटीयम् –

आर्यभटीयं या आर्यसिद्धान्त के मुख्य दो भाग हैं। प्रथम में गीति छन्द के १० पद्य हैं जिसमें ग्रहों के भगण (राशिचक्र-भ्रमण) के मान पढ़े गए हैं। इस भाग को 'दशगीतिक' कहते हैं। द्वितीय भाग में तीन प्रकरण हैं जिनमें आर्या छन्द में १०८ श्लोक हैं। इन श्लोकों के अतिरिक्त एक मंगलाचरण और एक संख्या-परिभाषा को मिलाकर कुल १२० श्लोक इस ग्रन्थ में हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में दशगीतिक', 'गणित', 'कालक्रिया' और 'गोल' ये चार पाद हैं। गणित पाद में मंगलाचरण के अलावा ३२ आर्या हैं। अंकगणित, बीजगणित, भूमिति और त्रिकोण मिति सम्बन्धी विषयों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। उनमें दशगुणोत्तर संख्याओं के नाम, वर्ग, घन, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज, वृत्त और अन्य क्षेत्र, इनके क्षेत्रफल, घन, गोल इनके घनफल, भुजज्या-साधन, श्रेढी, त्रैराशिक, भिन्नकर्म, कुट्टक इत्यादि विषय हैं। आर्यभट्ट ने वृत्त की परिधि और व्यास का सूक्ष्म सम्बन्ध भी बताया –

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ।।

(आर्यभटीयम्, गणितपाद, १०)

अर्थात् वृत्त का विष्कम्भ (व्यास) यदि अयुतद्वय (२००००) हो तो उसकी परिणाह (परिधि) ६२८३२ होगी इस आधार पर व्यास और परिधि का सम्बन्ध १:३.१४१६ है।

१.६.३ आर्यभटीयम् का वैशिष्ट्य –

आर्यभटीयम् स्वयं में कई विशेषताओं से परिपूर्ण है अत: इसका बड़ा महत्व भी है। आइए इसकी

विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा करते हैं।

१.६.३.१ अङ्कसंज्ञा –

ज्योतिष के ग्रन्थों में एक (१), दो (२), तीन (३)... इत्यादि संख्याओं के प्रकटन हेतु पद्य-रचना में भू, नेत्र, राम... आदि शब्दों के प्रयोगों की परम्परा रही है। किन्तु, आर्यभट्ट ने संख्याओं के संकेतार्थ इस परम्परा से इतर दूसरी पद्धति का आविष्कार किया है। उन्होंने अक्षरों की ही संख्या का निर्धारण वर्णमाला में उनके क्रमानुसार करके संख्याओं का प्रकटन अक्षर-विशेष से किया है।

अ = १ ए = १००००००००००

इ = १०० ऐ = १००००००००००००

उ = १०००० ओ = १००००००००००००००

ऋ = १०००००० औ = १००००००००००००००००

लृ = १००००००००

क = १ च = ६ ट = ११ त = १६ प = २१

ख = २ छ = २ ठ = ७ थ = १७फ = २२

ग = ३ ज = ८ ड = १३ द = १८ ब = २३

घ = ४ झ = ९ ढ = १४ ध = १९ भ = २४

ङ = ५ ञ = १०ण = १५न = २० म = २५

य = ३० र = ४० ल = ५०व = ६०

श = ७०ष = ८० स = ९०ह = १००

ऐसा लगता है कि इस पद्धति का आविष्कार भी आर्यभट्ट ने स्वयं ही किया होगा क्यूंकि प्राय: अन्यत्र इस प्रकार का अंक-प्रदर्शन नहीं मिलता है। इस पद्धति से बहुत ही कम शब्दों में बड़ी से बड़ी संख्याओं का ज्ञान हो जाता है। जहां सब ग्रहों के भगण बताने में अन्य पद्धति में ९ से १० श्लोक लगते हैं वहीं आर्यभट्ट ने दो ही श्लोकों में सभी ग्रहों के भगण पढ़ दिए हैं। इसीलिये जहां अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों में मध्यमाधिकार के विषय ५० से ७० श्लोकों में प्रस्तुत किये जाते हैं वहीं इस ग्रन्थ में प्राय: उन्हीं विषयों का समावेश १० आर्या श्लोकों में ही कर दिया गया है।

किन्तु, जहां एक ओर संक्षिप्तीकरण इस पद्धति का गुण है वहीं दूसरी ओर इसमें अशुद्धि की सम्भावना अधिक होने का दोष भी है। एक भी अक्षर का हेर-फेर संख्याओं में भारी उलट-फेर कर सकता है। यही कारण है कि डा. केर्न के द्वारा संपादित पुस्तक में भू-भगण की संख्या का मान 'बु' के स्थान पर 'षु' होने के कारण मूल पुस्तक के भू-भगण की संख्या से ५७००० अधिक है।

१.६.३.२. भूभ्रमण-सिद्धान्त -

यद्यपि वेदों में भू-भ्रमण के संकेत यत्र-तत्र मिलते हैं तथापि ज्योतिष-शास्त्रीय इतिहास में आर्यभट्ट पहले ज्ञात गणितज्ञ थे जिन्होंने सर्वप्रथम भू के भ्रमण की बात कही है –

अनुलोमगतिर्नौस्थ: पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।।

अर्थात् जिस प्रकार (चलती हुई) नौका में बैठा हुआ मनुष्य स्थिर (अचलायमान) वस्तुओं को नौका के विपरीत दिशा में जाता हुआ देखता है ठीक उसी प्रकार, (चलती हुई) पृथ्वी पर स्थित (मनुष्य) स्थिर नक्षत्रों को अपने पश्चिम क्षितिज की ओर जाते हुए (देखता है) ।

पृथ्वी के भ्रमण की गति को बताते हुए वो कहते हैं –

प्राणेनैति कलां भू.........................।

अर्थात् प्राण नामक काल-परिमाण (पल का षष्ठांश) में पृथ्वी एक कला चलती है।

१.६.३.३. युगपद्धति -

आर्यभट्ट की युग पद्धति अन्य सिद्धांतों से भिन्न है। दशगीतिका के अनुसार –

काहो मनवो ढ१४ मनुयुगश्ख गतास्ते चङ मनुयुगछना२७ च।

इस ग्रन्थ में १ मनु में ७२ युग बताए गए हैं जबकि अन्य सिद्धांतों में युगों की संख्या ७१ बतलाई गयी है। 'सूर्यसिद्धान्त' आदि के सामान इसमें मन्वन्तर के आरम्भ में संधि नहीं बताई गयी है। आर्यभट कलियुग का आरम्भ शुक्रवार को तथा महायुगारम्भ बुधवार को मानते हैं। सतयुग आदि चतुर्युगों की व्यवस्था भी आर्यभट के अनुसार अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों की अपेक्षा भिन्न है।

यह ग्रन्थ अति संक्षिप्त और बोधगम्य है। यह ग्रन्थ ज्योतिष के नित्य व्यवहार में उपयोगी बनाने की दृष्टि से नहीं, बल्कि केवल सैद्धान्तिक महत्त्व के विषयों का संग्रह करने के उद्देश्य से लिखा है।

आर्यभट्ट के अतिरिक्त आर्यभट्ट द्वितीय का भी उल्लेख ज्योतिष-शास्त्रीय इतिहास में मिलता है जिनका काल शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी ८७५ शक माना है।

बोध प्रश्न

प्र.५ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) 'आर्यभटीयम्' ग्रन्थ में २ पाद हैं। ()
(ख) 'ई' अक्षर से १०००० संख्या का बोध होता है। ()
(ग) 'प' से २१ संख्या का बोध होता है। ()

(घ) आर्यभट्ट ने पृथ्वी को चलायमान माना है। ()

(ङ) आर्यभट्ट के अनुसार १ मनु में ७२ युग होते हैं। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.५ आर्यभटीय-पद्धति में संख्याओं का ज्ञान कैसे करते हैं, लिखें।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.६ रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

(क) कुसुमपुर का दूसरा नाम ___________ है।

(ख) वृत्त का विष्कम्भ ___________ होता है।

(ग) 'ध' से ________ संख्या का बोध होता है।

(घ) पृथ्वी की गति ५ प्राण में _______ कला होती है।

(ङ) आर्यभट्ट के अनुसार, कलियुग का आरम्भ ________ वार से होता है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.६ 'अनुलोमगतिर्नौस्थ:'....... श्लोक का अर्थ लिखिए।

____

____

____

____

१.७ वराहमिहिर –

आचार्य वराहमिहिर त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के पितामह कहे जा सकते हैं। क्योंकि वो एक ऐसे ज्योतिषी हैं जिन्होंने ज्योतिष के तीनों स्कन्धों का सांगोपांग वर्णन किया है। निश्चित तौर पर उनके द्वारा रचित ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष के आधारभूत माने गए हैं।

१.७.१ वराहमिहिर का काल –

चूंकि वराहमिहिर ने स्वयं अपने काल इत्यादि का स्पष्ट तौर पर परिचय नहीं दिया है अंत: इनके काल का निर्धारण भी अन्त: और बाह्य साक्ष्यों का आधार पर ही सम्भव है।

पञ्चसिद्धान्तिका के रोमक सिद्धान्त के प्रकरण में यह लिखा गया है कि अहर्गण बनाने के लिए ४२७ शक को घटाया जाए –

सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।

(पञ्चसिद्धान्तिका, १/८)

सप्त (७) अश्वि (२) वेद (४); सप्ताश्विवेदसंख्यं (४२७) शककालम् अपास्य (घटाकर).....।

इस प्रकार ४२७ शक या ५०५ ई. यदि पञ्चसिद्धान्तिका का रचना-काल माना जाए तो शङ्कर बालकृष्णदीक्षित के शब्दों में उनका जन्म निश्चित ही ग्रन्थ-रचना के १५-२० वर्ष पहले ही हुआ होगा अत: उनका काल ५०५ ई. से ५१२ ई. माना जाना चाहिए। आइए इस सम्बन्ध में वराहमिहिर के ही एक अन्य ग्रन्थ बृहत्संहिता से एक अन्य उद्धरण लेते हैं। इसके अनुसार वराहमिहिर कहते हैं कि उनके समय में अयनान्त मृग अर्थात् मकर के आदि में उत्तरायण और कर्क के आदि में दक्षिणायन क्रमश: धनिष्ठा और आश्लेषा नक्षत्र में होता था–

साम्प्रतमयनं सवितु: कर्कटाद्यं मृगादितश्चान्यत्।

(बृहत्संहिता ३/१/१)

अयनांश की गति के आधार पर उनका काल छठी शताब्दी का आरम्भ माना जा सकता है। यहाँ तक तो बात हुई अन्त:साक्ष्यों के आधार पर। आइए, अब थोड़ा बाह्य साक्ष्यों पर दृष्टिपात करते हैं।

वराहमिहिर के समकालीन लेखकों ने किसी न किसी रूप में उन्हें उद्धृत किया है और परवर्ती लेखकों व टीकाकारों ने उनकी रचनाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। परवर्ती कल्याणवर्मा ने अपने ग्रन्थ 'सारावली' में आचार्य वराहमिहिर का नाम बड़े ही आदर से लिया है –

विस्तरकृतानि मुनिभि: परिहृत्य पुरातनानि शास्त्राणि।
होरातन्त्रं रचितं वराहमिहिरेण संक्षेपात्।।

(सारावली १/३)

कल्याणवर्मा का समय विद्वानों ने ५०० शक (५७८ ई.) माना है। अत: निश्चित ही वराहमिहिर का काल इनके पूर्व का ही है। 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' एवं 'खण्डखाद्य' के प्रणेता आचार्य ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रन्थों में वराहमिहिर की चर्चा की है। चूंकि ब्रह्मगुप्त ने अपने जन्म-समय की स्पष्ट चर्चा की है अत: इससे भी स्पष्ट है कि वराहमिहिर ५०० शक अर्थात् छठी शताब्दी के उत्तरार्ध से पूर्व हुए हैं। डा. गोरख प्रसाद ने वराहमिहिर का जन्म-काल ४२७ शक के पश्चात् का माना है।

१.७.२ वराहमिहिर का परिचय –

इतिहासकार डा. उदयनारायण राव ने अपने ग्रन्थ 'गुप्त राजवंश तथा उसका युग' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार में स्थित ९ विद्वानों(नवरत्नों) में से एक वराहमिहिर थे। वस्तुत: इसका आधार कालिदास के 'ज्योतिर्विदाभरण' का एक श्लोक है –

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्ट घटखर्परकालिदासा: ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते: सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य।।

अर्थात् धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर, वररुचि ये ९ रत्न राजा (विक्रमादित्य) की सभा के थे।

वराहमिहिर के जन्मस्थान को लेकर भिन्न-भिन्न मत हैं। चूंकि एक पाठ में स्थान कापित्थ आया है तो दूसरे में काम्पिल्य इन नामों में भी विवाद है सुधाकर द्विवेदी वर्तमान कालपी को अपभ्रंश मानते हुए उनका मूल निवास उत्तर प्रदेश मानते हैं तो कोई उज्जयिनी का निवासी मानता है। डा. नेमिचन्द्र शास्त्री भी आचार्य वराहमिहिर का जन्म कालपी नगर में ५०५ ई में मानते हुए कालान्तर में उनके उज्जयिनी-निवास की बात करते हैं। उज्जैन के पास कपित्थ नामक ग्राम के निवासी आदित्यदास के पुत्र उन्हीं से विद्या का अध्ययन कर (तदवाप्तबोध:) सूर्य से वर प्राप्त कर (सवितृलब्धवरप्रसाद) वराहमिहिर द्वारा पूर्व काल के मुनियों के ग्रन्थों को देखकर यह सुन्दर होरा ग्रन्थ बनाया गया है –

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोध: कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसाद:।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिराञ्चकार।।

(बृहज्जातकम्, उपसंहार ९)

आचार्य वराहमिहिर पूर्णरूपेण वैष्णव और सूर्योपासक थे चूंकि बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने चैत्रादि बारह मासों के नाम वैष्णवपरक ही रखे हैं –

मृगशीर्षाद्या: केशवनारायणमाधवा: सगोविन्दा:।
विष्णुमधुसूदनाख्यौ त्रिविक्रमो वामनश्चैव।।

(बृहत्संहिता १०५/१४)

१.७.३ त्रिस्कन्धमर्मज्ञ वराहमिहिर –

आचार्य वराहमिहिर ही एक ऐसे श्रेष्ठ त्रिस्कन्धज्ञ हुए हैं जिन्होंने अपने ज्योतिष के ग्रन्थों में तीनों स्कन्धों का विधिवत् निरूपण किया है। आचार्य वराहमिहिर से परवर्ती आज तक कोई भी ऐसा आचार्य नहीं हुआ जिसने ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों पर अपनी लेखनी उठाई हो।

त्रिस्कन्धज्ञ की प्रशंसा करते हुए आचार्य वराहमिहिर लिखते हैं कि जो व्यक्ति गणित स्कन्ध में सुष्ठु ज्ञान रखता है तथा लग्न आदि छाया शंकु आदि के माध्यम से अथवा जला-घटिका इत्यादि से सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेता है तथा होरा, संहिता का सम्यक् ज्ञान रखता है उसकी वाणी मिथ्या कभी नहीं होती –

तंत्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते।
होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या।।

(बृहत्संहिता, २/१५)

ज्योतिषशास्त्र को महार्णव (ज्योतिषशास्त्रमहार्णवप्रतरणे.. – बृहज्जातक १/२) की संज्ञा के महत्त्व को प्रकट करते हुए कहते हैं –

अप्यर्णवस्य पुरुष: परतरन् कदाचिदासादयेत् अनिलवेगवशेन पारम्।
न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य गच्छेत् कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम्।।

१.७.४ वराहमिहिर का कर्तृत्व –

प्रिय अध्येता! जैसा की मैंने पूर्व में आपसे चर्चा की कि वराहमिहिर ने ज्योतिष के भी स्कन्धों पर अपनी सशक्त लेखनी चलाई है। उनका सबसे विशाल एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बृहत्संहिता है जिसका प्रणयन उन्होंने सबसे अंत में किया। जैसा कि वह स्वयं कहते हैं –

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ता: ।
होरागतं विस्तरतश्च जन्मयात्राविवाहैस्सह पूर्वमुक्तम्।।

(बृहत्संहिता, १/१०)

अर्थात् ताराग्रहों (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) के वक्र, अनुवक्र, उदय, अस्तमय आदि (विविध सैद्धान्तिक विषयों) का वर्णन मैंने करण ग्रन्थ (पञ्चसिद्धान्तिका) में किया है। होरा (स्कन्धान्तार्गत) विषयों का जन्म-यात्रा-विवाह (विषयक) ग्रंथों के साथ विस्तारपूर्वक वर्णन मैंने इसके पहले ही कर दिया है।

अत: बृहत्संहिता में उपस्थापित ज्योतिषीय सिद्धांत बड़े ही महत्त्वपूर्ण, प्रासंगिक और सम-सामयिक हैं। यहाँ पर मैंने 'उपस्थापित' शब्द का प्रयोग किया है न कि 'प्रतिपादित' चूंकि वराहमिहिर स्वयं कहते हैं '**विस्तरकृतानि मुनिभि: परिहृत्य पुरातनानि शास्त्राणि सारं समुद्धृत्य..**' अर्थात् पूर्व में कथित आचार्यों के मतों को संकलन कर उसका सार-रूप अपने मत के साथ-साथ इस ग्रन्थ में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यहां आपके मन में जिज्ञासा उठ रही होगी कि बृहत्संहिता के पूर्व अन्य किन ग्रंथों की रचना

वराहमिहिर ने की। तो आइए, इस पर एक दृष्टिपात करते हैं।

१.७.४.१ पञ्चसिद्धान्तिका –

सर्वप्रथम पञ्चसिद्धान्तिका नामक करण ग्रन्थ की रचना उन्होंने की। जैसा कि पूर्व में चर्चा की गयी है कि इसमें तत्कालीन पांच सिद्धांत ग्रंथों - सौर, पितामह वाशिष्ठ, रोमक और पौलिश का वर्णन है, जिसमें ग्रहों की गति-स्थिति-ग्रहण आदि के साधन सम्बन्धी विषयों की चर्चा है। इन सभी सिद्धान्तों का संक्षेपत: संकलन करके इन पाँचों का गणित की दृष्टि से आंकलन भी किया है। उनके अनुसार सौर सिद्धांत इन सभी में उत्तम है। -

पौलिशकृतो स्फुटोऽसौ तस्यासन्नस्तु रोमक: प्रोक्त: ।
स्पष्टतर: सावित्र: परिशेषौ दूरविभ्रष्टौ।।

(पञ्चसिद्धान्तिका, १/४)

अर्थात् पौलिश सिद्धान्त गणितीय दृष्टि से स्पष्ट है, रोमक भी उसी के आस-पास है। सबसे स्पष्ट सौर सिद्धान्त है अन्य दो (पैतामह और वाशिष्ठ) अत्यन्त अशुद्ध हैं। यह ग्रन्थ सिद्धान्त स्कन्ध है। इस ग्रन्थ पर महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी और जी थिबो कृत टीका भी उपलब्ध है।

इसके अलावा विवाहपटल, बृहज्जातक, लघुजातक, बृहद्योगयात्रा और फ़िर अंत में बृहत्संहिता इनकी रचना वराहमिहिर ने की। इनमें विवाहपटल, बृहद्योगयात्रा और बृहत्संहिता ये संहिता स्कन्ध के अंतर्गत आते हैं। बृहज्जातक और लघुजातक ये दोनों होरा या फलित शाखा के ग्रन्थ हैं।

१.७.४.२ बृहत्संहिता

बृहत्संहिता भारतीय ज्योतिष के इतिहास में मील का पत्थर है। इस ग्रन्थ ने भारतीय ज्योतिष की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाने का काम किया है। संहिता ग्रन्थ होने के कारण इसमें नगर, देश, द्वीप बड़े भूभाग आदि पर ग्रह-चार के द्वारा होने वाले प्राकृतिक प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसकी दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्व का है। इसमें प्रथम दो अध्याय क्रमश: ‘उपनयन’ और ‘साम्वत्सर’ नाम के हैं जिनमें क्रमश: ज्योतिषशास्त्र, संहिता इत्यादि के स्वरुप और साम्वत्सर (ज्योतिषी) के लक्षणों का सविस्तार वर्णन है। इसके पश्चात् अध्याय संख्या ३ से लेकर ११ तक सूर्य, चन्द्र, राहू और अन्य ग्रहों के चार (संचरण) का फल वर्णित है। अध्याय सं १२ व् १३ में क्रमश: अगस्त्य और सप्तर्षियों के उदयास्त का वर्णन फल सहित किया गया है। १४ वें नक्षत्रकूर्माध्याय में प्राचीन भारतवर्ष के नक्षत्राधारित ९ विभागों का वर्णन है। इसके बाद नक्षत्रव्यूह, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम का वर्णन है उसके बाद वर्षफल नमक अध्याय में विविध संवत्सरों के पहला विचार मिलते हैं जिनके

आधार पर आजकल पंचांगों में वर्षों के फल लिखे जाते हैं। गर्भलक्षण, गर्भसंभव, स्वात्याषाढीयोग, सद्योवर्षण इत्यादि अध्यायों में संभावित वर्षा के योगों का विचार किया गया है। इसके बाद कुसुमफल, संध्या, दिग्दाह, भूकम्प, उल्का, परिवेष (मण्डल), गन्धर्वनगर (विशेष आकाशीय स्थिति), प्रतिसूर्य, निर्घात – इन सृष्टि के चमत्कारों का वर्णन है। इसके बाद धान्यादिकों के मूल्य, इन्द्रध्वज और नीराजन का वर्णन है। फिर खञ्जन नामक पक्षी के दर्शन-फल और दिव्य, अन्तरिक्ष, भौम उत्पातों का वर्णन है। इसके पश्चात् मयूरचित्रक, पुष्यस्नान, पट्टलक्षण, खड्गलक्षण का वर्णन है। इसके बाद वास्तुप्रकरण के अंतर्गत विविध विषयों का विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त दकार्गल (धरती के नीचे जल का) विचार,शकुन विचार, स्त्री-पुरुष-लक्षण इत्यादि भी वर्णित हैं। इस पर केर्न की टीका के अतिरिक्त अच्युताननन्द झा और सुरेश चन्द्र मिश्र की टीकाएँ उपलब्ध हैं।

१.७.४.२ बृहज्जातक

यह होरा शास्त्र इस नाम से भी प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा परवर्ती आचार्यों कल्याणवर्मा आदि ने भी की है। इस ग्रन्थ में ग्रहों और राशियों के संपूर्ण परिचय के अतिरिक्त वियोनिजन्म, निषेक, अष्टकवर्ग, आयुर्दाय, दशान्तर्दशा, विविध राजयोग, नाभसयोग, कर्माजीव, स्त्रीजातक आदि विषयों का वर्णन है। बृहज्जातक पर भटोत्पल की टीका के अतिरिक्त बलभद्र, महीदास, महीधर, रुद्र (दशाध्यायी), सुबोधिनी इत्यादि की टीकाएं हैं।

भटोत्पल ने वराहमिहिर के प्राय: सभी ग्रन्थों की टीका लिखी है। यद्यपि वराह के ग्रन्थ अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रचलित हैं किन्तु भटोत्पल की टीकाओं ने उन्हें और भी सुबोध्य और लोकप्रिय बना दिया है। भटोत्पल की टीकाओं का काल प्राय: ८८८ शक (वराह के लगभग ४०० वर्ष बाद का) है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हालांकि आरम्भ में वराहमिहिर ने करण-ग्रन्थ की रचना की किन्तु बाद में उनका झुकाव ग्रहों के प्रभाव के अध्ययन की ओर ज्यादा हो गया और विशेषकर अनेकों प्रकार के सृष्टिगत-चमत्कार, पदार्थों के गुण-धर्म और व्यवहार के प्रति उनका ध्यान अधिक आकृष्ट हुआ। वराहमिहिर का योगदान भारतीय ज्योतिष में अतुल्य है। बिना इनकी चर्चा किये भारतीय-ज्योतिष का इतिहास पूर्ण नहीं हो सकता है। वह सच्चे अर्थों में भारतीय-ज्योतिष रूप आकाश के देदीप्यमान मिहिर (सूर्य) के रूप में सदैव ही विराजमान रहेंगे।

बोध प्रश्न

प्र.७ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) 'पञ्चसिद्धान्तिका' संहिता-स्कन्ध का ग्रन्थ है। ()

(ख) वराहमिहिर के समय दक्षिणायन धनिष्ठा नक्षत्र में होता था। ()

(ग) वराहमिहिर का जन्म-काल छठी शताब्दी के बाद का है। ()

(घ) अगस्त्यचार का वर्णन बृहज्जातक में है। ()

(ङ) इन्द्रध्वज का वर्णन बृहत्संहिता में नहीं है। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.७ पञ्चसिद्धान्तिका के विषय में लिखें।

____

____

____

____

१.८ सारांश –

ज्योतिषीय अवधारणाएं, संकल्पनाएँ एवं सिद्धान्त ऋग्वेद, तैत्तिरीयोपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण आदि वैदिक वाङ्मय में पग-पग पर दृष्टिगोचर होते हैं । ऋषियों ने वैदिक वाङ्मय में एकत्र इन ज्योतिषीय विषयों की इसलिए नहीं की चूंकि तत्कालीन ऋषि का उद्देश्य ज्योतिष आदि किसी शास्त्र-विशेष का प्रवर्तन करना नहीं था । कालान्तर में ज्योतिष के १८ प्रवर्तक आचार्य माने गए हैं । महात्मा लगध ज्योतिष शास्त्र के आचार्य रहे जिनके द्वारा प्रतिपादित सूत्रों का संकलन 'ऋक्ज्योतिष', 'याजुष ज्योतिष' एवं 'अथर्व ज्योतिष' इत्यादि नाम से उनके शिष्यों ने किया। वेदांग ज्योतिष 'ऋक् ज्योतिष', 'याजुष् ज्योतिष' एवं 'अथर्व ज्योतिष' के सम्मिलित रूप को कहते हैं।'ऋक् ज्योतिष' में ३६ श्लोक और 'याजुष् ज्योतिष' में ४४ श्लोक हैं। इन दोनों में विषय तो प्रायः एक ही है किन्तु शब्दों और पाठ-भेदों का अंतर है । अथर्व ज्योतिष में १६२ श्लोक पाए जाते हैं जो कि १४ प्रकरणों में विभक्त हैं । ऋक् ज्योतिष में युग, अयन, वर्ष, मास, ऋतु, दिनमान, पर्वगण, पर्वसम्मित नक्षत्र, पल इत्यादि मान, लग्न, ग्रह-गति आदि विषयों का वर्णन किया गया है । अथर्व ज्योतिष पितामह-कश्यप-संवाद रूप है। इसमें १५ मुहूर्तों की भी चर्चा है। आर्यभट्ट के ग्रन्थ आर्यभटीयम् के 'दशगीतिका', 'गणित', 'कालक्रिया' और 'गोल' ये चार पादों में कुल १२० श्लोक हैं। आर्यभट्ट ने संख्याओं के संकेतार्थ नई पद्धति का आविष्कार किया है। आर्यभट्ट पहले ज्ञात गणितज्ञ थे जिन्होंने सर्वप्रथम भू के भ्रमण की बात कही। अयनांश की गति के आधार पर वराहमिहिर का काल छठी शताब्दी का आरम्भ माना जा सकता है। पञ्चसिद्धान्तिका, विवाहपटल,

बृहज्जातक, लघुजातक, बृहद्योगयात्रा और फ़िर अंत में बृहत्संहिता इनकी रचना वराहमिहिर ने की। इनमें विवाहपटल, बृहद्योगयात्रा और बृहत्संहिता ये संहिता स्कन्ध के अंतर्गत आते हैं। बृहज्जातक और लघुजातक ये दोनों होरा या फलित शाखा के ग्रन्थ हैं।

१.९ शब्दावली –

प्रणम्य - अभिवादन करके।

प्रवक्ष्यामि - कहूंगा।

दिनर्त्वयनमासाङ्गं - दिवस, ऋतु, अयन और मास जिसके अङ्ग हैं।

प्रपद्येते – प्राप्त करते हैं।

श्रविष्ठादौ - श्रविष्ठा (धनिष्ठा) के आरम्भ में।

सूर्याचन्द्रमसावुदक् - सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर।

सार्पार्धे - आश्लेषा) के आधे पर।

त्रिंशत् – ३००।

सषट्षष्टिः -६६।

अह्नां - दिनों का।

अब्दम् - वर्ष।

विष्कम्भः - व्यास।

अयुतद्वयम् – २००००।

परिणाहः - परिधि।

नौस्थः - नौका में बैठा हुआ।

तदवाप्तबोधः - उन्हीं से ज्ञान प्राप्त करने वाला (मैं वराहमिहिर) ।

सवितृलब्धवरप्रसादः - सूर्य से वर प्राप्त किया है जिसने (ऐसा मैं वराहमिहिर) ।

१.१० बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्र.१ (क) (√) (ख) (×) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.२ (क) १४००ई.पू. से १५०० ई.पू.

(ख) डा. शाम शास्त्री

(ग) ३६

(घ) १४

(ङ) ३

प्र.३ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (×)

प्र.४ (क) आर्द्रा

(ख) २

(ग) १५

(घ) ४ अंगुल

(ङ) कर्म

प्र.५ (क) (×) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (√) (ङ) (√)

प्र.६ (क) पाटलिपुत्र

(ख) अयुतद्वय (२००००)

(ग) १९

(घ) ५ कला

(ङ) शुक्रवार

प्र.७ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (×)

१.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. झारखंडी शिवनाथ (१९९०) भारतीय ज्योतिष (मूल – शंकर बालकृष्ण दीक्षित), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।

२. प्रसाद गोरख (१९९०), भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

१.१२ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. शास्त्री नेमीचन्द्र (२०१४), भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

२. शास्त्री गिरिजा शंकर (२००१), आचार्य वराहमिहिर, ज्योतिष कर्मकांड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, इलाहाबाद।

३. द्विवेदी सुधाकर (१८९२), गणक तरंगिणी।

१.१३ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. वेदांग ज्योतिष का परिचय दीजिए।

२. आर्यभटीयम में वर्णित विषयों पर प्रकाश डालिए।

३. भारतीय ज्योतिष के इतिहास में वराहमिहिर की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

इकाई - 2 लल्ल, ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर एवं श्रीपति

इकाई संरचना

२.१ प्रस्तावना
२.२ उद्देश्य
२.३ सिद्धान्त स्कन्ध का प्रगति-काल
२.४ ब्रह्मगुप्त
२.४.१ ब्रह्मगुप्त का परिचय और काल
२.४.२ ब्रह्मगुप्त का कर्तृत्व
२.४.२.१ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त
२.४.२.२ खण्डखाद्य
२.४.३ ब्रह्मगुप्त का वैशिष्ट्य
२.५. लल्ल
२.६ वटेश्वर
२.७ श्रीपति
२.८ सारांश
२.९ शब्दावली
२.१० बोध प्रश्नों के उत्तर
२.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
२.१२ सहायक ग्रन्थ सूची
२.१३ निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! ज्योतिष-शास्त्र के एम.ए. तृतीय सेमेस्टर (तृतीय पत्र) के द्वितीय खण्ड की द्वितीय इकाई में आपका स्वागत है। यह बड़े ही संतोष का विषय है कि आपके पाठ्यक्रम के इस खण्ड में भारतीय-ज्योतिष-शास्त्र की समृद्ध परम्परा के विषय में विस्तार से चर्चा की जा रही है। पिछली इकाई में हमने भारतीय ज्योतिष के स्वतन्त्र स्वरुप की प्रतिष्ठा-काल पर चर्चा की थी। प्रतिष्ठा काल से मेरा तात्पर्य यह कतई नहीं है की लगध और वेदांग ज्योतिष के पूर्व भारतीय-ज्योतिष का अस्तित्व नहीं था और इस बारे में विस्तार से पिछली इकाई में मैंने चर्चा भी की है। यहाँ प्रतिष्ठा काल से मेरा अभिप्राय केवल यही है की यद्यपि लगध के पूर्व ज्योतिष-शास्त्रीय विषय वैदिक साहित्य में मिलते हैं किन्तु उनकी चर्चा केवल प्रसंगवशात ही है न की स्वतंत्र शास्त्र के अंग के रूप में।

वस्तुत: स्वतंत्र रूप से ज्योतिष-शास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन बाद में हुआ जब पाराशर, लगध इत्यादि के ग्रन्थ प्रकाश में आए। इसी कारण से मैं लगध, आर्यभट्ट और वराहमिहिर के काल को भारतीय ज्योतिष का उत्पत्ति काल न कहकर प्रतिष्ठा काल कहता हूँ। इस काल का यह प्रभाव पड़ा कि स्वतंत्र रूप से भारतीय ज्योतिष और गणित के क्षेत्र में सिद्धांतों का उपस्थापन और तत्सम्बद्ध ग्रंथों का प्रणयन तेजी से आरम्भ हो गया। अत: इस काल-खण्ड को **सिद्धान्त स्कन्ध का प्रगति-काल** कहना चाहिए। इस काल के कुछ विद्वानों की चर्चा इस इकाई में करेंगे जिन्होंने भारतीय ज्योतिष के इतिहास में अपने कर्तृत्व से अपनी अविस्मरणीय उपस्थिति दर्ज कराई। इन विद्वानों में से लल्ल, ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर और श्रीपति की चर्चा इस इकाई में की जाएगी।

जैसा कि पूर्व में भी मैंने आपसे निवेदन किया था कि पाठ्यक्रम की सीमा को देखते हुए हम विद्वानों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे अत: विस्तृत अध्ययन के लिए आपको इन विद्वानों के मूलग्रंथों के साथ-साथ प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों को भी देखना चाहिए।

२.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्योतिष में लल्ल के योगदान को विस्तारपूर्वक निरूपित कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- भारतीय ज्योतिष के प्रगति-काल का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे।
- ब्रह्मगुप्त और उनके कर्तृत्व का परिचय दे सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- वटेश्वर और उनके ग्रन्थ का स्वरूप को समझा सकने में कुशल हो सकेंगे।

- श्रीपति की कृति के वर्णन में निपुण हो सकेंगे।

२.३ सिद्धान्त स्कन्ध का प्रगतिकाल –

प्रिय बंधुओं! सिद्धान्त स्कन्ध के प्रगति-काल से मेरा तात्पर्य यह कतई नहीं समझा जाना चाहिए कि इसके पहले या बाद में सिद्धांत ग्रंथों की रचना नहीं हुई। ऐसा अभिप्राय मेरा कतई नहीं है। यहाँ मेरा आशय यह है कि वराहमिहिर और आर्यभट्ट ने जो राह दिखाई या सिद्धान्त-ज्योतिष के क्षेत्र में जो नई युक्तियों और विचारधाराओं के द्वार खोले उन विचारों ने परवर्ती आचार्यों को बहुत प्रेरित किया और पूर्व की तुलना में ज्योतिष के खासकर सिद्धांत ज्योतिष के स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन अधिक मात्रा में हुआ। फलत: ज्योतिष के क्षेत्र में नई-नई प्रतिभाओं और विचारों का उदय होने के कारण इस शास्त्र को बड़ी गति मिली। यही वजह है कि इस काल-खण्ड को **सिद्धांत ज्योतिष का प्रगति-काल** समझना अधिक उचित होगा।

मेरे कथन से यह भी बिलकुल नहीं समझना चाहिए कि केवल सिद्धांत-स्कंध के क्षेत्र में ही शोध ने गति पकड़ी बल्कि इसे यूं समझें कि उस समय ज्योतिष-शास्त्र को समग्रता की दृष्टि से देखा जाता था। आज की तरह शास्त्र की दुर्दशा नहीं थी कि बस फलित-स्कन्ध के किसी मूल ग्रन्थ के आरंभिक २-३ अध्याय या एक-दो द्वितीयक सामग्री पढ़ ली और बन गए ज्योतिषी! अगर आप बृहत्संहिता के साम्वत्सरसूत्राध्याय को पढ़े जिसमें ज्योतिषी के लक्षण, योग्यता और अधिकारित्व की बात की गयी है तो निश्चित ही आपको थोड़ा अंदाज़ा अवश्य हो जाएगा कि वर्त्तमान-कालीन ज्योतिषी वराहमिहिर के उक्त पैमाने पर कितना खरे उतरते हैं।

यहाँ मेरे कहने का उद्देश्य वर्तमान स्थिति का दूषण करना कतई नहीं है किन्तु मेरे कहने से दो बातें स्पष्ट तौर पर समझी जा सकती हैं।

पहली, वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ में ज्योतिषी के त्रिस्कन्धज्ञ होने की जो बात कही है वह लक्षण निश्चित ही उस समय चरितार्थ होता था और जब तक निर्धारित मानकों के आधार पर विद्वान् को परीक्षण में खरा नहीं पाया जाता था तब तक उसे एक ज्योतिषी के रूप में राज्याश्रय नहीं मिलता था और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होती थी। यही कारण है कि भारतीय ज्योतिष के इतिहास में जितने भी प्रसिद्ध ज्योतिषी हुए हैं उनमें से प्राय: सभी किसी न किसी राजा के दरबार में प्रतिष्ठित थे। दूसरे शब्दों में कहूं तो, ज्योतिष के किसी एक स्कंध में प्रवीण को उस समय ज्योतिषी ही नहीं माना जाता था। इसलिए विद्वान् ज्योतिषी सिद्धांत के साथ-साथ फलित और संहिता का भी जानकार होता था। हाँ यह अलग बात है की अभिरुचि के अनुसार किसी का झुकाव किसी एक स्कंध की और अधिक तो दूसरे का दूसरे स्कन्ध की और अधिक हो। ऐसे में ज्योतिषी अपनी अभिरुचि व कौशल

के अनुसार ग्रंथों का प्रणयन करता है और इस क्रम में तद्विषय-सम्बद्ध अपने विचारों और सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है।

दूसरी बात यह है कि किसी-किसी काल-खण्ड में कुछ ऐसे विचारक विद्वान् हो जाते हैं जो संपूर्ण काल-खण्ड को प्रभावित कर देते हैं। जैसा कि वराहमिहिर और आर्यभट्ट ने किया। इनकी वजह से इस काल-खंड में सिद्धान्त-स्कंध के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी और प्रतिभाशाली युवाओं का झुकाव सिद्धान्त की ओर अधिक हो गया। यही कारण है कि परवर्ती आचार्यों यथा लल्ल, ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर आदि ने सिद्धान्त-ज्योतिषीय ग्रंथों की रचनाएं अधिक कीं। अत: इस काल-खण्ड को **सिद्धान्त-स्कन्ध का प्रगति-काल** कहना अधिक युक्तिसङ्गत होगा। तो आइए, कुछ बात उस काल-खण्ड की भी हो जाए।

मित्रों! भारतीय ज्योतिष के इतिहास का प्रत्येक काल-खण्ड अपने में एक विशेषता को समेटे हुए है। कोई भी काल-खण्ड किसी अन्य से कम या अधिक नहीं है। वस्तुत: काल-खण्ड तो उस शास्त्र की इतिहास-यात्रा को समझने का एक माध्यम है। इस दृष्टि से मैं यह कह सकता हूँ कि भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध ने इस काल-खण्ड से अपने विकास की गति पकड़ ली थी। आपके मन में यह प्रश्न निश्चय ही उठ रहा होगा कि इस काल-खण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् ज्योतिषी कौन थे? कुछ प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् इस प्रकार हैं – **श्रीषेण, विष्णुचन्द्र, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, पद्मनाभ, श्रीधर, महावीर, बलभद्र, वित्तेश्वर, मुंजाल, आर्य भट्ट द्वितीय, पृथूदकस्वामी, भटोत्पल, विजयनंदि, भानुभट्ट, वटेश्वर, श्रीपति, भोजराज** और **दशबल**। ये उन विद्वानों की सूची है जिनके ग्रन्थ अद्यावधि मिलते हैं इसके अतिरिक्त अन्य भी ज्योतिषी होंगे जिनके ग्रन्थ वर्त्तमान में उपलब्ध नहीं होते हैं। इन विद्वानों में चार का अध्ययन आपको इस इकाई में करना है, जो इस प्रकार हैं- ब्रह्मगुप्त, लल्ल, वटेश्वर और श्रीपति। ये क्रम इनके काल के अनुसार है। इन चारों का योगदान अविस्मरणीय है। आइए, क्रमश: इन पर थोड़ी चर्चा कर ली जाए।

२.४ ब्रह्मगुप्त -

उपरिलिखित पाठ्यांश में ब्रह्मगुप्त का नाम सबसे पहले है चूंकि काल-क्रम में ये अन्य तीनों से पूर्व में आते हैं। अत: आइए, सर्वप्रथम चर्चा इन्हीं की करते हैं।

ब्रह्मगुप्त गणित-ज्योतिष के बहुत बड़े आचार्य थे। वराहमिहिर और आर्यभट्ट के बाद और भास्कर के पहले जिन भारतीय गणितज्ञों पर अधिक शोध-कार्य हुए उनमें ब्रह्मगुप्त का नाम सर्वोपरि है। भास्कर ने इनके ग्रन्थ ब्राह्म-स्फुट-सिद्धान्त को आधार बनाकर ही अपने ग्रंथ सिद्धान्त शिरोमणि की रचना की। भास्कराचार्य ने इनको 'गणकचक्रचूड़ामणि' कहकर इनके प्रति अपनी अगाध श्रद्धा

व्यक्त की है। इसी से ब्रह्मगुप्त की महत्ता को समझा जा सकता है।

२.४.१ ब्रह्मगुप्त का परिचय और काल –

ब्रह्मगुप्त गुजरात के आबू पर्वत के निकट दक्षिण मारवाड़ क्षेत्र के भिलमाल या भीनमाल के निवासी थे। यह स्थान सातवीं शताब्दी में जब कि चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था उत्तर गुजरात की राजधानी था। इसका उल्लेख ह्वेन्सांग ने अपने ग्रंथ में भी किया है। ब्रह्मगुप्त ने अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'ब्राह्म-स्फुट-सिद्धान्त' तत्कालीन चापवंशीय नरेश के काल में लिखा था जिसके राज्य में भिल्लमालकाचार्य' के रूप में उनकी ख्याति थी। इनका जन्म शक ५२० में हुआ था। इनके पिता का नाम जिष्णुगुप्त था।

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्।
पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभि ५५० रतीतैः ।।
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन।।

(ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त)

अर्थात् श्रीचापवंश के श्रीमान् व्याघ्रमुख राजा के काल में (**श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे**) ५५० शक में (**पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः**) ३० वर्ष (**त्रिंशद्वर्षेण**) की अवस्था में मुझ श्रीमान् जिष्णु के पुत्र ब्रह्मगुप्त के द्वारा सज्जन गणितज्ञों और खगोलवेत्ताओं की प्रसन्नता के लिए (**सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै**) किया गया है।

अल्बरूनी के ग्रन्थ के आधार पर प्रो. साचो कहते हैं कि " प्राच्य-सुधार के इतिहास में ब्रह्मगुप्त का स्थान बहुत ऊंचा है। टालमी से पहले अरबवासियों को ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान सिखाया क्योंकि उस समय के अरबी भाषा के साहित्य में ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त और खण्डखाद्य का अरबी भाषा में अनुवाद क्रमशः 'अस सिन्ध हिन्द' और 'अल अरकंद' इस नाम से मिलता है। अलबरूनी स्वयं कहता है कि उसके काल में सिंध क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का बहुत प्रचार था। उपरिवर्णित श्लोक पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्मगुप्त गोल और गणित दोनों की पृथक् किन्तु सम्बद्ध सत्ता स्वीकारते थे और उनकी दोनों में ही पकड़ थी। इतना ही नहीं बल्कि उस समय तक गणित और खगोल दोनों को अलग किन्तु सम्बद्ध विषय मानकर उनका अध्ययन होता था, अन्यथा ब्रह्मगुप्त **सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै** यह नहीं कहते। वह पहले आचार्य थे जिन्होंने गणित-ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की और ज्योतिष और गणित के विषयों को अलग-अलग अध्यायों में बाँटा।

२.४.२. ब्रह्मगुप्त का कर्तृत्व –

ब्रह्मगुप्त के दो प्रसिद्ध ग्रन्थ मिलते हैं। पहला है 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त' और दूसरा है 'खण्डखाद्यक'। इन्होंने शक ५५० (६८५ वि.) में ब्राह्मस्फुट सिद्धांत की रचना की थी। इन्होंने स्थान-स्थान पर लिखा है कि आर्यभट, श्रीषेण विष्णुचन्द्र आदि की गणना से ग्रहों का स्पष्ट स्थान शुद्ध नहीं आता, इसलिए वे त्याज्य हैं, और ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में दृग्गणितैक्य होता है, इसलिए वही मानना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत की रचना ग्रहों का प्रत्यक्ष वेध करके की थी और वे इस बात के पक्षधर थे कि समय-समय पर गणना और वेध के अन्तर को वेध के द्वारा गणना शुद्ध कर लेना चाहिए।

२.४.२.१ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त -

इसमें कुल २४ अध्यायों में १००८ श्लोक हैं। इसके प्रत्येक अध्याय के अंत में यह बताया गया है कि उसमें कितने छन्द हैं। प्रथम दस अध्यायों में सिद्धान्त-ज्योतिषीय विषयों का वर्णन है तदुपरांत शेष १४ अध्यायों में अन्य बहुत महत्व के विषय हैं, जिनमें दूषणाध्याय, अंकगणित, बीजगणित, शंकुच्छायादिज्ञानाध्याय, छेदश्चित्युत्तराध्याय और यन्त्राध्याय इन छह अध्यायों को छोड़कर शेष में पूर्वार्ध में वर्णित ज्योतिषीय विषयों की उपपत्ति का वर्णन है। आइए, ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त के अध्यायों रूपरेखा संक्षिप्त में जानें।

इस ग्रन्थ में प्रथम दस अध्यायों में सिद्धान्त-ज्योतिष के विषयों का वर्णन है। पहले मध्यमाधिकार में ग्रहों की मध्यम गति की गणना है। दूसरे स्पष्टाधिकार में स्पष्ट गति जानने की रीति बतायी गयी है। इसी अध्याय में ज्या निकालने की रीति भी बतायी गई है, जिसमें त्रिज्या का मान ३२७० कला माना गया है। तीसरे त्रिप्रश्नाधिकार में दिशा, देश और काल ज्योतिष के इन तीन मुख्य विषयों पर चर्चा की गयी है। चौथे चंद्रग्रहणाधिकार में चंद्रग्रहण के साधन की विधि का वर्णन है। पांचवे सूर्यग्रहणाधिकार में सूर्यग्रहण की गणना करने की रीति है। छठे उदयास्ताधिकार में बताया गया है कि चंद्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये सूर्य के कितने पास आने पर अस्त हो जाते हैं, अर्थात अदृश्य हो जाते हैं, और कितनी दूर होने से उदित होते हैं, अर्थात् दिखायी पड़ने लगते हैं। सातवें चंद्रशृङ्गोन्नत्यधिकार में बताया गया है कि शुक्लपक्ष द्वितीया के दिन चंद्रमा का कौन सा श्रृंग (नोंक) उठा रहता है। आठवें चंद्रच्छायाधिकार में उदित और अस्त होते हुए चंद्रमा के वेध से छाया आदि का ज्ञान करने की रीति है। अन्य ग्रंथों में इसके लिए कोई अलग अध्याय नहीं है। नवें ग्रहयुत्यधिकार में ब्रह्मगुप्त ने चर्चा की है कि ग्रहों की युति की गणना कैसे की जाती है। दसवें भग्रहयुत्यधिकार में बताया गया है कि नक्षत्रों या तारों के साथ ग्रहों की युति कब होती है और इसकी

गणना कैसे की जाती है। ग्रन्थकार ने इस अध्याय में नक्षत्रों के ध्रुवीय भोगांश और शर के साथ-साथ नक्षत्रों की पूरी सूची दी है। इन दस अध्यायों के अतिरिक्त अध्याय संख्या १३ से १७ तक पांच और अध्याय हैं जिनमें सिद्धान्त-ज्योतिषीय-विषयों की चर्चा है। तेरहवें मध्यगति-उत्तराध्याय में ग्रहों की मध्यगति संबंधी प्रश्न और उत्तर हैं। चौदहवें स्फुटगति-उत्तराध्याय में ग्रहों की स्पष्टगति संबंधी प्रश्न और उत्तर हैं। पन्द्रहवें त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में त्रिप्रश्नाध्याय संबंधी प्रश्नोत्तर हैं। सोलहवें ग्रहणोत्तराध्याय में सूर्य-चन्द्रमा के ग्रहण संबंधी प्रश्न हैं। सत्रहवें शृङ्गोन्नत्युत्तराध्याय में चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति संबंधी प्रश्नोत्तर हैं।

उपरिलिखित अध्यायों के अतिरिक्त अन्य अध्यायों में वेध और गणित के विषयों पर चर्चा है। इनमें ग्रन्थ के ग्यारहवें तंत्रपरीक्षाध्याय नामक अध्याय में ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट, श्रीषेण, विष्णुचंद्र, आदि पूर्वाचार्यों के कुछ विषयों का खण्डन किया है, चूंकि वह वेध या दृक्तुल्यता के पक्षधर थे और इस क्रम में जो सिद्धांत इसमें बाधक थे उसका स्पष्ट विरोध भी उन्होंने किया।
जिस कि ऊपर मैंने संकेत दिया कि ब्रह्मगुप्त ने गणित से सम्बंधित चार अध्याय इस ग्रन्थ में रखे हैं। इनमें ग्रन्थ के बारहवें गणिताध्याय में जोडन्ना, घटना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्नों का योग-घटाना आदि, त्रैराशिक, व्यस्त-त्रैराशिक, मिश्रक व्यवहार इत्यादि अंक-गणित या पाटीगणित के विषय हैं। श्रेढी व्यवहार (समानान्तर श्रेढी), क्षेत्र व्यवहार (त्रिभुज, चतुर्भुज आदि के क्षेत्रफल जानने की रीति) क्षेत्र व्यवहार (त्रिभुज, चतुर्भुज आदि के क्षेत्रफल जानने की रीति), वृत्त-क्षेत्र गणित खात व्यवहार (खाई आदि का घनफल जानने की रीति), चिति व्यवहार, क्राकचिक व्यवहार (आरा चलाने वाले के काम का गणित), राशि व्यवहार, छाया व्यवहार (दीप स्तंभ और उसकी छाया से संबंधित प्रश्न के साधने की रीति) आदि इसी अध्याय में वर्णित हैं। इसके आगे अभ्यास के लिए एक अध्याय है। अट्ठारहवें कुट्टकाध्याय में कुट्टक की विधि से प्रश्नों का उत्तर जानने की रीति है। इस अध्याय में ब्रह्मगुप्त ने प्रत्येक प्रकार के कुट्टक की रीति बतायी है और इससे ग्रहों के भगण आदि के ज्ञान की विधि भी बताई है। १०३ श्लोकों वाला यह अध्याय कई खण्डों में विभाजित है। एक खंड में धन, ऋण और शून्य का जोड़-घटाना-गुणा-भाग, करणी का जोड़-घटाना-गुणा-भाग बताया गया है। दूसरे खंड में एकवर्ण-समीकरण, अनेकवर्ण-समीकरण आदि बीजगणित के प्रश्न हैं। तीसरे खंड में भावित की गणित है। चौथा खंड वर्गप्रकृति नामक है। पाँचवें खंड में अनेक उदाहरण दिये गये हैं। उन्नीसवें शंकुच्छायादिज्ञानाध्याय में त्रिकोणमिति से संबंधित गणित यथा छाया से समय या किसी वस्तु की ऊँचाई आदि जानने की विधि बतायी गयी है। बीसवें छेदश्चित्युत्तराध्याय में १९ श्लोक हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य अध्यायों में सिद्धान्त-ज्योतिष के गोल-शाखा से सम्बन्धित हैं। इक्कीसवें गोलाध्याय में भूगोल और खगोल संबंधी गणनाएं और सिद्धान्त चार खण्डों – ज्याप्रकरण, स्फुटगतिवासना, ग्रहणवासना, गोलबन्धाधिकार में वर्णित हैं। बाईसवें यंत्राध्याय में ५७ श्लोकों में अनेक प्रकार के यंत्रों का वर्णन किया गया है जिनसे समय का ज्ञान होता है और ग्रहों के उन्नतांश, नतांश आदि जाने जाते हैं।

तेईसवें मानाध्याय में सौर, चांद्र, सावन आदि नौ प्रकार के काल-मानों की चर्चा है। चौबीसवें संज्ञाध्याय भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्मगुप्त एक ऐसे विद्वान् हैं जो बिना किसी लाग-लपेट के अपनी शोध-परक दृष्टि को रखते हैं। उन्होंने इस प्रकरण में अपना स्पष्ट मत रखते हुए कहते हैं सूर्य, सोम, पौलिश, रोमक, वासिष्ठ और यवन सिद्धांतों में एक ही सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। और यदि कुछ भेद है तो वैसे ही जैसे सूर्य की संक्रान्ति स्थान भेद के कारण भिन्न-भिन्न कालों में कही जाती है। ध्यानग्रहोपदेशाध्याय में तिथि, नक्षत्र, आदि की गणना करने की सरल रीति बतायी गयी है।

इस ग्रन्थ के आरम्भ के १० अध्यायों की टीका पृथूदक द्वारा लिखी हुई मिलती है। यद्यपि कोलब्रुक ने अपने लेख में एकत्र लिखा है कि उसने संपूर्ण ग्रन्थ पर टीका लिखी है तथापि इसके अंकगणित और बीजगणित से सम्बन्धित अध्यायों पर कोलब्रुक का अंग्रेज़ी अनुवाद मिलता है।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(च) बृहत्संहिता के साम्वत्सरसूत्राध्याय में ज्योतिषी का लक्षण वर्णित है। ()

(छ) ब्रह्मगुप्त भीनमाल के निवासी थे। ()

(ज) ब्रह्मगुप्त के पिता का नाम समुद्रगुप्त था। ()

(झ) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में २० अध्याय हैं। ()

(ञ) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के बारहवें अध्याय में अंकगणित का वर्णन है। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ सिद्धान्त-स्कन्ध का प्रगति-काल के विद्वानों के नाम लिखें।

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(च) ___________की ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के प्रारम्भिक १० अध्यायों पर टीका है।

(छ) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के गणितीय अध्यायों पर _____________की अंग्रेज़ी टीका है।

(ज) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के________ में तिथि, नक्षत्र, आदि की गणना-रीति वर्णित है।

(झ) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में चौदहवाँ अध्याय ________ है।

(ञ) ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में सत्रहवाँ अध्याय ________है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

२.४.२.२. खण्डखाद्य -

यह ब्रह्मगुप्त का दूसरा ग्रन्थ है। ब्रह्मगुप्त ने शक ५८७ में ६९ वर्ष की उम्र में इसकी रचना तिथि, नक्षत्रों और ग्रहों की सुगम रीति से गणना करने के लिए की। यद्यपि ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट के कई मतों का कहीं पर समुचित कारणों से तो कहीं पर दुराग्रह के कारण खण्डन किया। किन्तु इस ग्रन्थ में उन्होंने आर्यभट्ट के कुछ मतों के अनुसार विषयों का उपस्थापन किया। परंतु इस ग्रंथ में भी ब्रह्मगुप्त ने नवीन बातें बतायी हैं और कुछ संशोधन भी किये हैं। इस ग्रंथ के पूर्व और उत्तर ये दो भाग हैं। प्रथम भाग में ९ अधिकार हैं जिनमें कुल १९४ श्लोक आर्या छन्द में हैं। दूसरे भाग में ५ अधिकार हैं जिनमें कुल मिलाकर ७१ आर्याएं हैं। इनमें तिथि, नक्षत्रादि की गणना, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पांच ताराग्रहों की मध्य और स्पष्ट गणना, त्रिप्रश्नाधिकार, चंद्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, उदयास्ताधिकार, चंद्रशृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार नामक अध्याय पूर्व खण्ड में हैं। ग्रन्थ के उत्तर खण्ड में ब्रह्मगुप्त ने अपने संशोधनों की चर्चा की है और नए विषयों पर अपने विचार रखे हैं। इसके साथ ही ताराग्रहों और नक्षत्रों की युति के संबंध में विचार किया है और नक्षत्रों के योग-तारों का ध्रुवक और विक्षेप बताया है।

खण्डखाद्य पर वरुण और भटोत्पल की टीकाएँ हैं। इस पर पृथूदक ने भी एक टीका लिखी है।

२.४.३. ब्रह्मगुप्त का वैशिष्ट्य -

ब्रह्मगुप्त सायन रवि के मेष संक्रमण को ही वास्तविक मेष संक्रमण मानते हैं। ब्रह्मगुप्त के अनुसार उनका उद्देश्य वर्षमान बदलने का था और उन्होंने बदला भी। आलोचक शंकर बालकृष्ण दीक्षित कहते हैं कि यदि ब्रह्मगुप्त वेध करके उसकी तुलना करते तो उनके सरीखे अन्वेषक को सायन वर्ष का वास्तविक मान ज्ञात होना कठिन नहीं था। ब्रह्मगुप्त ने तत्कालीन वेधानुकूल ग्रह लाने के लिए उनके भगणों की स्वयं ही कल्पना की। वह स्वयं वेध करने वाले अन्वेषक थे। और इस कारण उनका स्वयं का अभिमान कहीं-कहीं प्रकट होता है –

ब्रह्मोक्तमध्यरविशशितदुच्चतत्परिधिभि: स्फुटीकरणम्।
कृत्वैवं स्पष्टतिथिर्दूरभ्रष्टान्यतन्त्रोक्तै: ।।
आर्यभटस्याज्ञानान्मध्यममन्दोच्चशीघ्रपरिधीनाम्।
न स्पष्टा भौमाद्या: स्पष्टा ब्रह्मोक्तमध्याद्यै: ।।

अर्थात् ब्रह्मगुप्त के द्वारा प्रतिपादित विधि के द्वारा मध्यम सूर्य, चन्द्र और उनके द्वारा लायी हुई ही तिथि शुद्ध है और अन्य तन्त्रों द्वारा लाई हुई अत्यन्त भ्रष्ट है। ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्त से आनीत मध्यमग्रह, मन्दोच्च और शीघ्रपरिधि द्वारा भौमादि स्पष्टग्रह शुद्ध आते हैं, आर्यभटीय से नहीं।
लेकिन यह भी है कि कहीं-कहीं उनका अभिमान दुराग्रह बन गया है क्योंकि उन्होंने आर्यभट्ट में कुछ ऐसे दोष दिखाए हैं जो वास्तव में नहीं हैं। इस प्रकार उपरिलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मगुप्त ने सिद्धान्त-ज्योतिष और गणित से सम्बन्धित नए और मौलिक विचार तथा विधियां आज से १३०० वर्ष रखीं थीं जिनके आधार पर ग्रहों की स्थिति आदि वेध से भी ठीक उतरती थी। इस सब बातों पर विचार करने से सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त एक महान आचार्य थे। इनकी पद्धति का अनुसरण प्राय: सभी परवर्ती आचार्यों ने किया। इस प्रकार ब्रह्मगुप्त का भारतीय ज्योतिष में योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

२.५. लल्ल -

भारतीय ज्योतिष-परम्परा का बड़ा आचार्य माना जाता है। इनका काल ब्रह्मगुप्त के बाद का है। आपके मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि लल्ल को भारतीय ज्योतिषेतिहास में स्थान क्यूं मिला। तो मित्रों! इसका कारण उनकी दो विशेषताएं हैं। इनकी पहली विशेषता यह है कि इन्होंने सिद्धान्त के साथ-साथ संहिता स्कंध पर भी कार्य किया। उस काल-खण्ड में जबकि सिद्धान्त-

ज्योतिष का अध्ययन ज़ोर पकड़ रहा था उन्होंने सिद्धान्त के साथ ही संहिता के महत्वपूर्ण भाग मुहूर्त पर काम किया। दूसरी बात जो लल्ल को भारतीयज्योतिष के इतिहास में महत्त्वपूर्ण बनाती है वह है उनका ग्रन्थ शिष्यधीवृद्धिद जो कि सिद्धान्तस्कंध के ही एक उपविभाग तन्त्र शाखा का ग्रन्थ है। और भारतीय-ज्योतिष-वाङ्मय में तंत्र पद्धति पर अङ्गुलिगण्य ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें लल्ल रचित तंत्र बहु प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसे आर्यभटीयम के आधार पर लिखा गया है।

२.५.१. लल्ल का काल और परिचय –

लल्ल के समय के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पंडित सुधाकर द्विवेदी ने लल्ल का समय ४२१ शक माना है। और उनके इस काल-निर्धारण का आधार आर्यभटीयम् ग्रन्थ है। द्विवेदी जी के अनुसार चूंकि लल्ल ने आर्यभटीयम में आये हुए ग्रहों में बीज-संस्कार देने के लिए ४२० शक घटाकर ग्रह स्पष्ट करने के लिए इन्होंने कहा है। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त अपनी खण्डखाद्य की टीका की भूमिका में लल्ल का समय शक ६७० मानते हैं। लल्ल के काल का निर्धारण वह नक्षत्रों के योगतारों के ध्रुवांकों के आधार पर कहते हैं। उनके अनुसार लल्ल ने नक्षत्रों के योगतारों के जो ध्रुवक दिये हैं वे ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के ६ तारों के ध्रुवक से लगभग २ अंश अधिक हैं और दो तारों के ध्रुवक से लगभग १०१ अंश अधिक हैं, इसलिए इनका समय ब्रह्मगुप्त के समय से कम से कम ८५ वर्ष और अधिक से अधिक १४० वर्ष बाद का है। ब्रह्मगुप्त के पश्चात लल्ल के होने की बात श्री बबुआ मिश्र की संपादित खण्डखाद्य की टीका से भी सिद्ध होती है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित इनका समय ५६० शक के लगभग बताते हैं, जिससे यह ब्रह्मगुप्त के समकालीन सिद्ध होते हैं।

लल्ल दक्षिण-भारतीय हो सकते हैं। इसके पीछे शंकर बालकृष्ण दीक्षित दो तर्क देते हैं। पहला अलबरूनी ने शक ९५० के पहले के प्राय: सभी ज्योतिषियों का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया किन्तु लल्ल का नामोल्लेख नहीं किया इसका कारण यह हो सकता है कि उत्तर भारत के अधिकांश भाग में कम से कम ९५० शक तक लल्ल के ग्रन्थ का प्रचार नहीं हुआ था। दूसरा लल्ल द्वारा प्रस्तुत बीजसंस्कार से संस्कृत आर्यभट्ट के सिद्धान्त का दक्षिण भारत में प्रचार था।

२.५.२ लल्ल का कर्तृत्व –

जैसा की पूर्व में मैंने कहा कि लल्ल के दो ग्रन्थ तो पूर्णतया प्रकाश में आए जिनमें पहला है शिष्यधीवृद्धिदम् और दूसरा है रत्नकोष। आये क्रमश: इन पर संक्षिप्त में चर्चा करें।

२.५.२.१ शिष्यधीवृद्धिदम् –

कहा यह जाता है कि चूंकि लल्ल के शिष्यों को आर्यभट के ग्रन्थ आर्यभटीयम् को समझने में कठिनाई होती थी, इसलिए लल्ल ने शिष्यधीवृद्धिदम् ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने विस्तारपूर्वक

उदाहरण देकर इस ग्रंथ लिखा। इस ग्रन्थ में १००० श्लोक हैं। इसमें गणित-संबंधी अध्याय नहीं हैं, केवल ज्योतिष-संबंधी विषयों पर विस्तारपूर्वक चिन्तन किया है। यह ग्रन्थ मुख्यतया दो भागों में बंटा है – पहला गणिताध्याय और दूसरा गोलाध्याय। इस ग्रंथ के गणिताध्याय में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चंद्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, ग्रहादेयास्ताधिकार, चंद्रछायाधिकार, चंद्रशृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार नामक १३ अध्याय हैं। गोलाध्याय में छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्यगतिवासना, भूगोलाध्याय, ग्रहभ्रम-संस्थाध्याय, भुवनकोश, मिथ्याज्ञानाध्याय, यंत्राध्याय और प्रश्नाध्याय हैं। इन अध्यायों के नाम से भी प्रकट होता है कि यह पुस्तक ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त के बाद लिखी गयी है और ज्योतिष संबंधी जिन बातों की कमी ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत में थी, वह यहाँ पूरी की गई है। अंकगणित या बीजगणित संबंधी कोई अध्याय इसमें नहीं है, जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के बाद, जब ज्योतिष और गणित संबंधी विकास बहुत तीव्रता से हुआ तब, इन दोनों शाखाओं पर स्वतन्त्ररूप से सविस्तार ग्रन्थ लिखने की परम्परा आरम्भ हो गयी। जिससे एक ओर कुछ विद्वानों यथा श्रीधर और महावीर ने केवल गणित-सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन किया,तो वहीं दूसरी ओर पृथूदकस्वामी, भटोत्पल आदि ने केवल ज्योतिष पर ग्रंथों की रचना की।

२.५.२.२. रत्नकोष –

लल्ल का दूसरा ग्रन्थ रत्नकोष एक मुहूर्तग्रन्थ है। इसका अनुमान पं. सुधाकर द्विवेदी अपनी गणकतरंगिणी में भी करते हैं, क्योंकि मुहूर्त चिंतामणि की पीयूषधारा टीका में लल्ल के मत की चर्चा है।

पाटीगणित (अंकगणित) और बीजगणित की कोई पुस्तक भी लल्ल की बनायी हुई थी, ऐसा सुधाकर द्विवेदी अनुमान करते हैं, परन्तु यह पुस्तक भी अब उपलब्ध नहीं है।

२.५.३ लल्ल का महत्त्व –

लल्ल ने स्वयं वेध करके बीजसंस्कार निरूपित किया। इससे यह सिद्ध होता है की वह सिद्धान्त-ज्योतिष के पंडित और खगोल के ज्ञाता होने के साथ-साथ एक अन्वेषक भी थे। लल्ल के महत्त्व और उनके योगदान को समझाने के लिए यह जानना पर्याप्त होगा की उनके ५०० से ८०० वर्षों बाद उनके द्वारा वेध करके बनाए गए गृह-बीजों के संस्कार करके ही १०१४ शक में करणप्रकाश और १३३९ शक में भटतुल्य नामक करण-ग्रन्थों की रचना हुई।

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) ब्रह्मगुप्त ने ६९ वर्ष की उम्र में खण्डखाद्य की रचना की। ()

(ख) खण्डखाद्य के प्रथम भाग में ९ अधिकार हैं। ()

(ग) खण्डखाद्य के श्लोक मंदाक्रांता छन्द में हैं। ()

(घ) रत्नकोष एक करण-ग्रन्थ है। ()

(ङ) ब्रह्मगुप्त सायन रवि के मेष संक्रमण को ही वास्तविक मेष संक्रमण मानते हैं। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ सिद्धान्त स्कन्ध के भेदों के विषय में लिखें।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) खण्डखाद्य के प्रथम भाग में कुल ___________श्लोक हैं।

(ख) खण्डखाद्य के दूसरे भाग में कुल ___________ आर्याएं हैं।

(ग) शिष्यधीवृद्धिदम के मध्यमाधिकार में _________अध्याय हैं।

(घ) मुहूर्त चिंतामणि की _________ टीका में लल्ल के मत की चर्चा है।

(ङ) १०१४ शक में ________ करण-ग्रन्थ की रचना शिष्यधीवृद्धिदम के आधार पर हुई।

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ सिद्धांत के उन्नति-काल के विद्वानों के नाम लिखिए।

____

____

____

____

२.६ वटेश्वर -

प्रिय अध्येता! वटेश्वर भारतीय ज्योतिषियों में एक ऐसे विद्वान् हैं जिन पर ज्योतिषीय पंडितों ने अधिक चर्चा नहीं की है। इसमें आश्चर्य नहीं कि शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इनका नामोल्लेख अपने ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष में नहीं किया। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि न ही इन्हें वटेश्वरसिद्धान्त ग्रन्थ मिला और न ही श्रीपति के ग्रन्थ सिद्धांतशेखर का इन्होंने प्रत्यक्ष किया जिसमें वटेश्वर सिद्धांत सम्बन्धी कुछ मतों का उल्लेख मिलता है। इन पर थोड़ी बहुत बात केवल महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने ही अपने ग्रन्थ गणकतरंगिणी में की है। किन्तु मेरा मानना है कि यह एक ऐसे मणि हैं जिनको जितना घिसा जाए उतना ही ज्योतिष-विषयक-प्रकाश मिलेगा और ज्योतिषीय इतिहास के बहुत सारे अल्प प्रकाशित तथ्य उजागर होंगे। इनका एक ही ग्रन्थ 'वटेश्वरसिद्धान्त' नामक मिलता है जो कि सिद्धान्त स्कन्ध का अत्यन्त प्रौढ़ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ से वटेश्वर का परिचय और उनकी प्रतिभा का ज्ञान मिलता है।

२.६.१. वटेश्वर का काल और परिचय –

वटेश्वर का जन्म आनन्दपुर में ८०२ शक में ब्राह्मण परिवार हुआ। इनके पिता का नाम महदत्त था। इनके पिता वेद, धर्मशास्त्र, स्मृति और आचार के बड़े पण्डित थे। किम्वदंती है की भगवत-कृपा से वर-रूप में महदत्त जी को वटेश्वर पुत्र-रूप में प्राप्त हुए। यह निश्चय ही उनके महनीय गुणों और पाण्डित्य का परिचायक है। यह सूचना उनके ग्रन्थ से ही मिलती है जिसमें प्रत्येक अध्याय के अंत में स्वयं उन्होंने लिखा है –

"इति श्रीमदानन्द्पुरीयमहदत्तसुतवटेश्वरविरचिते स्वनामसंज्ञिते स्फुटसिद्धान्ते" ।

अब यह आनन्दपुर, पञ्जाब प्रान्त में स्थित वर्तमान आनन्दपुर ही है या अन्य कोई इस विषय में स्पष्टतापूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। वटेश्वरसिद्धान्त की रचना के समय इनकी उम्र २४ वर्ष थी। जैसा की उन्होंने स्वयं ही कहा है –

शकेन्द्रकालात् भुजशून्यकुञ्जरैः (८०२) रभूद्तीतैर्मम जन्म हायनैः।
अकारि सिद्धान्तमितैः स्वजन्मतो मया जिनाब्दैः (२४) द्युसदामनुग्रहात्।।

अर्थात् शक नृप के काल से भुज (२) शून्य (०) कुंजर (८) (अङ्कानां वामतो गतिः इस नियम से) ८०२ हायनैः (वर्षों के द्वारा) मेरा जन्म हुआ। दूसरे शब्दों में कहूं तो ८०२ शक में मेरा जन्म हुआ। द्युसदां (ग्रहों या देवों की) अनुग्रहात् (कृपा के कारण) स्वजन्मतः (अपने जन्म-काल से) जिनाब्दैः (२४ वर्षो के द्वारा) मैंने इस सिद्धान्त (वटेश्वरसिद्धान्त) की रचना की।

तत्कालीन विद्वानों के हृदय में उनके प्रति बहुत सम्मान था। भास्कराचार्य ने भी कहीं-कहीं इनके मत

का खण्डन बिना इनके नाम लिए किया है। विशेषकर ब्रह्मा के आयु के सम्बन्ध में वटेश्वर के ही मत को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सिद्धांत शिरोमणि में कहा –

..गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।

भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगः ग्रहाः वर्तमानात् द्युयातात् प्रसाध्याः॥

यहां 'केचित्' इस पद से वटेश्वर का ही संकेत ग्रहण किया जाना चाहिए क्यूंकि वटेश्वर ने ब्रह्मा की आयु का निर्धारण करते हुए कहा है –

'कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समाः स्युः'

अर्थात् क (ब्रह्मा) के जन्म से अष्टौ सदला: (अर्धयुक्त आठ = साढे आठ) समा: (वर्ष) हो चुके हों।

वटेश्वर आर्यभट्ट के बहुत बड़े समर्थक और ब्रह्मगुप्त के विरोधी थे। जिस प्रकार आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ आर्यभटीयम के गणितपाद में मंगलाचरण में ग्रहों के कक्षा-क्रमानुसार ही वर्णन कर उन्हें प्रणाम किया है ठीक उसी प्रकार वटेश्वर भी अपने ग्रन्थ में मंगलाचरण करते हैं –

ब्रह्मावनीन्दु-बुध-शुक्र-दिवाकरार-जीवार्कसूनु-भगुरून् पितरौ च नत्वा।

ब्राह्मं ग्रहर्क्षगणितं महदत्तसूनुर्वक्ष्येऽखिलं स्फुटमतीव वटेश्वरोऽहम्॥

अर्थात् ब्रह्मा, अवनि (पृथ्वी), चन्द्रमा, दिवाकर (सूर्य), आर (मंगल), जीव (गुरु), अर्कासूनु (शनि), भ (नक्षत्र) और पितरों को प्रणाम करके मैं महदत्त जी का पुत्र वटेश्वर ब्राह्म (ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रतिपादित) अखिल (सम्पूर्ण) ग्रह-नक्षत्रगणित को (ब्रह्मगुप्त के भ्रमात्मक ज्ञान से दुरूह को) अत्यन्त स्पष्ट कर रहा हूँ।

यद्यपि वटेश्वर आर्यभट्ट के सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं फिर भी आर्यभट्ट के भूभ्रमण-सिद्धान्त को वह स्वीकार नहीं करते हैं। क्यूंकि स्वयं आर्यभट्ट इस मत को लेकर भ्रम की स्थिति में हैं। एक जगह तो वह 'अनुलोमगति: नौस्थ:' यह कहकर भूभ्रमण का सिद्धान्त रखते हैं वहीं दूसरी जगह -

उदयास्तामयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः।

लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः सग्रहो भ्रमति॥

(अर्थात् क्षितिज पर प्रतिदिन उदय और अस्त होने के लिये ग्रहों के साथ-साथ राशिचक्र प्रवह वायु के द्वारा फेंके (धकेले) जाने पर लंकादेशीय पूर्वापर मंडल में पश्चिम की ओर भ्रमण करता है।) यह कहकर दैनिक उदयास्त हेतु प्रवह-वायु-प्रेरित पश्चिमाभिमुख भ्रमण की भी बात करते हैं।

२.६.२. वटेश्वर का कर्तृत्व –

वटेश्वर की एक ही कृति ज्ञात है जो उन्होंने स्वयं के नाम से रची। इस ग्रन्थ की बड़ी ख्याति रही। उनके परवर्ती आचार्यों विशेषकर श्रीपति और भास्कर ने अपने मतों का मंडन -खंडन करने के लिए वटेश्वर के सिद्धान्त का यत्र-तत्र प्रयोग किया। श्रीपति के तो बहुत से विचार ब्रह्मगुप्त या वटेश्वर से प्रभावित हैं। वर्त्तमान में उपलब्ध इस ग्रन्थ का सम्पादन आचार्य रामस्वरूप शर्मा और पण्डित मुकुन्द मिश्र ने किया जो कि १९६२ ई. में तत्कालीन वैज्ञानिक अनुसन्धान और सांस्कृतिक मन्त्रालय, भारत सरकार के अनुदान से इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ अस्ट्रोनोमिकल एंड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया। वटेश्वर सिद्धान्त की अपनी टीका की भूमिका में आचार्य रामस्वरूप शर्मा कहते हैं कि " **अलबरूनी ने लिखा है कि वटेश्वर सिद्धांत नाम का एक उत्तम ग्रन्थ भारत में है जिसमें ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त पर आलोचना की गयी है" (वटेश्वर सिद्धान्त, भूमिका पृ.सं १५)**। आये इस ग्रन्थ पर कुछ चर्चा करें।

२.६.२.१. वटेश्वर सिद्धान्त -

यह ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है – १. मध्यमाधिकार, २. स्पष्टाधिकार और ३. त्रिप्रश्नाधिकार। यदि अन्य सिद्धांत ग्रंथो को देखें तो कह सकते हैं कि यह ग्रन्थ या तो अपूर्ण रह गया या फिर अपूर्ण ही प्राप्त होता है।...खैर जो भी हो, वर्तमान में उपलब्ध ग्रन्थ में उपर्युक्त मुख्यतः तीन अधिकार हैं। इसमें मध्यमाधिकार में १० अध्याय हैं। ये क्रमश: १. मंगलाचरण और परिचय, २. मानविवेक, ३. द्युगणविधि, ४. सर्वतोभद्र, ५. प्रत्ययशुद्धि, ६. करणविधि, ७. प्रमाणविधि, ८. देशान्तरविधि, ९. प्रश्नविधि और १०. दूषणानि। स्पष्टाधिकार में ७ अध्याय हैं, जो क्रमश: इस प्रकार हैं – १. स्फुटीकरणस्य प्रयोजन, २. स्वोच्चनीचग्रहस्फुटीकरण, ३. प्रतिमंडलस्पष्टीकरणविधि, ४. स्पष्टीकरण, ५. फलज्यास्फुटीकरण, ६. तिथ्यानयनविधि, ७. प्रश्नविधि। त्रिप्रश्नाधिकार में कुल १५ अध्याय हैं। ये इस प्रकार हैं – १. त्रिप्रश्नारम्भप्रयोजन, २. लम्बाक्ष्ज्यानयनविधि, ३. क्रन्तिज्यानयनविधि, ४. द्युज्यानयनविधि, ५. कुज्यानयनविधि, ६. अग्रानयनविधि, ७. स्वचारार्धज्याप्राणसाधनविधि, ८. लग्नादिविधि, ९. द्युदलभादिविधि, १०. इष्टछायाविधि, ११. सममंडलप्रवेशविधि, १२. कोणशंकुविधि, १३. छायातोऽर्कानयनविधि, १४. छायापरिलेखविधि, १५. प्रश्नाध्यायविधि।

इस ग्रन्थ में आर्यभट्ट के समान ही अन्य सिद्धान्त ग्रंथों से भिन्न ७२ महायुगों का एक मनु-काल माना गया है। इस ग्रन्थ में कहीं-कहीं पर तो ब्रह्मगुप्त का अनावश्यक खण्डन किया गया है। जैसे एकत्र वटेश्वर ब्रह्मगुप्त के इस मत का कि कलियुग के तीन चरण बीत गए हैं का **युगपादान् जिष्णुसुतस्त्रीन् यातानाह**...ऐसा कहकर खंडन करते हैं पर अन्यत्र स्वयं ही **युगत्रिवृन्दं**

सदृशाङ्ग्रयस्त्रय: ऐसा कहकर ब्रह्मगुप्तकथित मत को दुहराते हैं खंडन करते हैं। यद्यपि सभी सिद्धान्त ग्रंथों में नव प्रकार के काल-मानों की चर्चा करके उनमें चार सौर, चंद्र, सावन और नाक्षत्र की ही उपयोगिता पर बल देते हैं। भास्कराचार्य ने भी **मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्ते:** ऐसा कहा है। किन्तु वटेश्वर ने इस ग्रन्थ में सभी मानों की उपयोगिता बताते हुए किसका उपयोग किस निमित्त करना चाहिए यह स्पष्ट किया है। वटेश्वर सिद्धान्त में अहर्गण-साधन के भी कई प्रकार बताए हैं और इसके साथ ही लघु-अहर्गण-साधन की विधि भी बताई है। वटेश्वर ने क्रान्तिज्या के साधन के और दिक्-साधन के भी कई प्रकारों की चर्चा अपने ग्रन्थ में की है।

इसके अतिरिक्त अन्य बहुत सी विशेषताएं इस ग्रन्थ की हैं जो ग्रन्थ के अवलोकन से ज्ञात होंगी वह भी तब जब आप सिद्धान्त-ज्योतिष के अध्येता हों। संक्षेप में कहें तो यह ग्रन्थ निश्चय ही वटेश्वर की प्रतिभा को ज्योतिष-जगत के समक्ष प्रस्तुत करता है।

२.७. श्रीपति -

श्रीपति ज्योतिष की तीनों शाखाओं में अद्वितीय पंडित थे। प्रबोधचंद्रसेनगुप्त के अनुसार श्रीपति पहले भारतीय ज्योतिषी थे जिन्होंने काल-समीकरण के उस भाग का पता लगाया जो रविमार्ग की तिर्यकता के कारण उत्पन्न होता है। इन्होंने सिद्धान्त, फलित और संहिता स्कन्ध के मुहूर्त शाखा पर कार्य किया।

२.७.१ श्रीपति का काल और परिचय –

श्रीपति का एक करण-ग्रन्थ है 'धीकोटिदकरण' है। जैसा की आपको ज्ञात होगा कि करण-ग्रन्थ में किसी अभीष्ट शक से ग्रह-गणना की जाती है। इस ग्रन्थ में भी अभीष्ट शक से ग्रह-गणना है जो कि श्रीपति के काल-निर्धारण में सहायक है। इस ग्रन्थ में ९६१ शक से गणना की गयी है अत: निश्चय ही इनका काल ९६१ शक के आस-पास का ही होगा।

इन्होंने अपने वंश का कोई परिचय नहीं दिया है। किन्तु इनके ग्रन्थ रत्नमाला की टीका के आरम्भ में महादेव ने लिखा है –

"**कश्यपवंशपुण्डरीकखण्डमार्तण्ड: केशवस्य पौत्र: नागदेवस्य सूनु: संहितार्थामभिधातुमिच्छुराह**"॥

इससे यह ज्ञात होता है ये काश्यप-गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम 'केशव' और पिता का नाम 'नागदेव' था। श्रीपति स्वयं कहते हैं कि उन्होंने 'रत्नमाला' ग्रन्थ की रचना लल्ल के 'रत्नकोष' के आधार पर की। वस्तुत: खगोलशास्त्री और ज्योतिषशास्त्रीय इतिहासवेत्ता शंकर बालकृष्ण दीक्षित स्वयं लिखते हैं की उन्हें श्रीपति का सिद्धान्तशेखर ग्रन्थ नहीं मिला। यही कारण है

की उन्होंने श्रीपति के इस ग्रन्थ की चर्चा न करके संकेत-मात्र किया है। इसीलिये रत्नमाला धीकोटिदकरण के आधार पर ये श्रीपति को लल्ल का अनुयायी मानते हैं। किन्तु सिद्धान्तशेखर की चर्चा पण्डित सुधाकर द्विवेदी अपने ग्रन्थ गणकतरंगिणी में करते हैं। कालांतर में इस ग्रन्थ की प्राप्ति और प्रकाशन भी हुआ। और सिद्धान्त शेखर को देखने से ज्ञात होता है कि श्रीपति ने इस ग्रन्थ में जिन-जिन सिद्धान्तों का उपस्थापन किया है वो कहीं तो ब्रह्मगुप्त से और कहीं ब्रह्मगुप्त के परवर्ती और मतविरोधी वटेश्वर से प्रभावित हैं। लेकिन सिद्धान्तशेखर और चूंकि इस ग्रन्थ के दो प्रकरणों सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण पर मिली टीका में दो उदाहरण क्रमश: १५३२ शक और १५९३ शक के हैं अत: यह कहा जा सकता है कि इस काल तक तो कम से कम इस ग्रन्थ का प्रचार अवश्य ही रहा होगा।

२.७.२ श्रीपति का कर्तृत्व -

जैसा कि पूर्व में मैंने कहा कि श्रीपति तीनों ही स्कंधों के पंडित थे इन्होंने तीनों ही स्कंधों पर अपने ग्रंथों का प्रणयन करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। सिद्धांत के क्षेत्र में इनके दो ग्रन्थ क्रमश: 'सिद्धान्तशेखर' और 'धीकोटिदकरण' प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त फलित के एक ग्रन्थ 'जातकपद्धति' तथा मुहूर्त के एक ग्रन्थ 'रत्नमाला' का भी प्रणयन इन्होंने किया। इनका परिचय देते हुए शंकर बालकृष्ण दीक्षित कहते हैं कि चूंकि मुनीश्वर ने लीलावती की टीका में इनके ग्रन्थ के कुछ वचन उद्धृत किये हैं अत: ऐसा प्रतीत होता है कि पाटीगणित और बीजगणित पर भी इनका कोई ग्रन्थ रहा होगा। इसके अतिरिक्त इनके एक और ग्रन्थ 'रत्नसार' का उल्लेख भी मिलता है जो कि सम्भवत: रत्नमाला का संक्षिप्त रूप हो।

मुनीश्वर ने लीलावती में श्रीपति के जो उद्धरण दिए हैं उसी से पता चलता ही कि इन्होंने ज्याखण्डों के बिना ही केवल चाप द्वारा ज्या-साधन बताया है, जिसका पूर्व में वटेश्वर आदि ने निरूपण किया है। निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो प्राय: ब्रह्मगुप्त से आरम्भ होने वाले सिद्धान्त स्कंध के इस प्रगति-काल के न केवल अंतिम और महत्वपूर्ण कड़ी श्रीपति हैं बल्कि ये एक ऐसे विद्वान् हैं जो तीनों ही स्कंधों में पूर्ण दक्षता रखते हैं। यही कारण है कि श्रीपति निश्चय ही न केवल इस काल-खण्ड के अपितु सम्पूर्ण भारतीय-ज्योतिष-मणिमाला के एक अपूर्व और बहुमूल्य मणि हैं जिनके बिना यह माला निश्चयेन अपूर्ण है।

इस कालखण्ड के विद्वानों ने भारत की समृद्ध बौद्धिक परम्परा से विश्व को न केवल परिचित कराया अपितु गणित और खगोल के क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा को पूर्णतया स्थापित किया।

बोध प्रश्न

प्र.५ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) वटेश्वर का काल श्रीपति के बाद का है। ()

(ख) सिद्धान्तशेखर एक करण-ग्रन्थ है। ()

(ग) श्रीपति के पितामह का नाम श्रीषेण था। ()

(घ) वटेश्वर ब्रह्मगुप्त के मतानुयायी थे। ()

(ङ) सिद्धान्तशेखर वटेश्वर का ग्रन्थ नहीं है। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.५ सिद्धान्त स्कन्ध के भेदों के विषय में लिखें।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.६ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) श्रीपति के पिता का नाम__________था।

(ख) वटेश्वर का जन्म ____________शक में हुआ था।

(ग) वटेश्वरसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में ______ अध्याय हैं।

(घ) रत्नमाला के रचयिता ______________ हैं।

(ङ) वटेश्वर के पिता का नाम __________था।

अभ्यास प्रश्न

प्र.६ सिद्धांत के उन्नति-काल के विद्वानों के नाम लिखिए।

____

____

____

____

२.८ सारांश

वराहमिहिर और आर्यभट्ट की कृतियों ने सिद्धान्त-ज्योतिष के क्षेत्र में जो नई युक्तियों और विचारधाराओं के द्वार खोले उन विचारों ने परवर्ती आचार्यों को बहुत प्रेरित किया और पूर्व की तुलना में ज्योतिष के खासकर सिद्धांत ज्योतिष के स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन अधिक मात्रा में हुआ। फलत: इस काल-खण्ड को **सिद्धांत ज्योतिष का प्रगति-काल** समझना अधिक उचित होगा। ब्रह्मगुप्त गणित-ज्योतिष के बहुत बड़े आचार्य थे। भास्कराचार्य ने इनको 'गणकचक्रचूड़ामणि' कहकर इनके प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व्यक्त की है। ब्रह्मगुप्त का जन्म शक ५२० में गुजरात के भीनमाल में हुआ। अलबरूनी स्वयं कहता है कि उसके काल में सिंध क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का बहुत प्रचार था। ब्रह्मगुप्त के दो ग्रन्थ क्रमश: 'ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त' और 'खण्डखाद्यक' हैं। इन्होंने शक ५५० (६८५ वि.) में ब्राह्मस्फुट सिद्धांत की रचना की थी। ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत में कुल २४ अध्यायों में १००८ श्लोक हैं। प्रथम दस अध्यायों में सिद्धान्त-ज्योतिषीय विषयों का वर्णन है तदुपरांत शेष १४ अध्यायों में अन्य बहुत महत्व के विषय हैं, जिनमें दूषणाध्याय, अंकगणित, बीजगणित, शंकुच्छायादिज्ञानाध्याय, छेदश्चित्युत्तराध्याय और यन्त्राध्याय इन छह अध्यायों को छोड़कर शेष में पूर्वार्ध में वर्णित ज्योतिषीय विषयों की उपपत्ति का वर्णन है। ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत की रचना ग्रहों का प्रत्यक्ष वेध करके की थी।

लल्ल के दो ग्रन्थ क्रमश: शिष्यधीवृद्धिदम् और रत्नकोष हैं। शिष्यधीवृद्धिदम् में १००० श्लोक हैं। इसमें गणित-संबंधी अध्याय नहीं हैं, केवल ज्योतिष-संबंधी विषयों पर विस्तारपूर्वक चिन्तन किया है। यह ग्रन्थ मुख्यतया दो भागों में बंटा है – पहला गणिताध्याय और दूसरा गोलाध्याय। इस ग्रंथ के गणिताध्याय में १३ अध्याय तथा गोलाध्याय में ९ अध्याय हैं। लल्ल का दूसरा ग्रन्थ रत्नकोष एक मुहूर्तग्रन्थ है। लल्ल ने स्वयं वेध करके बीजसंस्कार निरूपित किया।

वटेश्वर का जन्म आनन्दपुर में ८०२ शक में ब्राह्मण परिवार हुआ। इनके पिता का नाम महदत्त था। इनका एक ही ग्रन्थ 'वटेश्वरसिद्धान्त' नामक मिलता है जो कि सिद्धान्त स्कन्ध का अत्यन्त प्रौढ़ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है – १. मध्यमाधिकार, २. स्पष्टाधिकार और ३. त्रिप्रश्नाधिकार। इसमें मध्यमाधिकार में १० अध्याय हैं। स्पष्टाधिकार में ७ अध्याय तथा त्रिप्रश्नाधिकार में कुल १५ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ में वटेश्वर ने आर्यभट्ट के सिद्धान्त का पोषण और ब्रह्मगुप्त का अनावश्यक खण्डन किया गया है।

श्रीपति का काल ९६१ शक के आस-पास का है। ये काश्यप-गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम 'केशव' और पिता का नाम 'नागदेव' था। श्रीपति ने 'रत्नमाला' ग्रन्थ की रचना

लल्ल के 'रत्नकोष' के आधार पर की। इनके कुल ४ ग्रन्थ मिलते हैं। सिद्धांत के क्षेत्र में इनके दो ग्रन्थ क्रमश: 'सिद्धान्तशेखर' और 'धीकोटिदकरण', फलित का एक ग्रन्थ 'जातकपद्धति' तथा मुहूर्त का एक ग्रन्थ 'रत्नमाला' है। इन्होंने ज्याखण्डों के बिना ही केवल चाप द्वारा ज्या-साधन बताया है।

२.९ शब्दावली

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे - श्रीचापवंश के श्रीमान् व्याघ्रमुख राजा के काल में।

वर्षशतै: पञ्चभिरतीतै: - विगत ५०० वर्षों के द्वारा।

पञ्चाशत्संयुक्तै – (उसमें) ५० जोड़ने के द्वारा।

वर्षशतै: पञ्चभिरतीतै: पञ्चाशत्संयुक्तै – बीते हुए ५५० वर्षों के द्वारा।

त्रिंशद्वर्षेण - ३० वर्षों के द्वारा।

सज्जनगणितज्ञगोलवित्प्रीत्यै - सज्जन गणितज्ञों और खगोलवेत्ताओं की प्रसन्नता के लिए।

शकेन्द्रकालात् - शक नृप के काल से।

भुज – (भुजाएं) २।

शून्य – ०।

कुंजर – हाथी (संख्या में आठ प्रकार के माने गए हैं) ८।

भुजशून्यकुञ्जरै: - ८०२।

हायनै: -वर्षों के द्वारा।

अकारि – किया।

द्युसदां - ग्रहों या देवों की।

अनुग्रहात् - कृपा के कारण।

जिनाब्दै: - २४ वर्षों के द्वारा।

सार्धवर्षाष्टकं – साढ़े आठ वर्ष।

ऊचु: - कहे।

द्युयातात् – अहर्गण से।

क - ब्रह्मा।

सदला: - अर्धयुक्त।

समा: - वर्ष।

२.१० बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.१ (क) (√) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.२ (क) पृथूदकस्वामी।

(ख) कोलब्रुक।

(ग) ध्यानग्रहोपदेशाध्याय।

(घ) चौदहवां।

(ङ) सत्रहवां।

प्र.३ (क) (√) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.४ (क) १९४।

(ख) ७१।

(ग) १३।

(घ) पीयूषधारा।

(ङ) करणप्रकाश।

प्र.५ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.६ (क) केशव।

(ख) ८०२।

(ग) १०।

(घ) श्रीपति।

(ङ) महदत्त।

२.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. झारखंडी शिवनाथ (१९९०) भारतीय ज्योतिष (मूल – शंकर बालकृष्ण दीक्षित), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।

२. प्रसाद गोरख (१९९०), भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

३. शर्मा पण्डित रामस्वरूप (१९६२), वटेश्वरसिद्धान्त, इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ अस्ट्रोनोमिकल एंड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली।

२.१२ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. शास्त्री नेमीचन्द्र (२०१४), भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

२. शास्त्री गिरिजा शंकर (२००१), आचार्य वराहमिहिर, ज्योतिष कर्मकांड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, इलाहाबाद।

३. द्विवेदी सुधाकर (१८९२), गणक तरंगिणी।

२.१३ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. वटेश्वर सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

२. श्रीपति के कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।

३. भारतीय ज्योतिष के इतिहास में ब्रह्मगुप्त की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

४. लल्ल के कर्तृत्व का निरूपण कीजिए।

इकाई - 3 भास्कराचार्य, मकरन्दाचार्य, केशवाचार्य एवं गणेश दैवज्ञ

इकाई की संरचना

३.१ प्रस्तावना
३.२ उद्देश्य
३.३. सिद्धान्त स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय
३.४ सिद्धान्त स्कन्ध का उन्नतिकाल
३.५ भास्कराचार्य
 ३.५.१ भास्कराचार्य का परिचय
 ३.५.२ भास्कराचार्य का कर्तृत्व
  ३.५.२.१ लीलावती
  ३.५.२.२ बीजगणित
  ३.५.२.३ सिद्धान्त शिरोमणि
 ३.५.३ भास्कराचार्य का वैशिष्ट्य
३.६ मकरंदाचार्य
३.७ गणेश दैवज्ञ
 ३.७.१ गणेश दैवज्ञ का काल
 ३.७.२ गणेश दैवज्ञ का परिचय
 ३.७.३ गणेश दैवज्ञ का कर्तृत्व
  ३.७.३.१ ग्रहलाघव
३.८ सारांश
३.९ शब्दावली
३.१० बोध प्रश्नों के उत्तर
३.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
३.१२ सहायक ग्रन्थ सूची
३.१३ निबन्धात्मक प्रश्न

३.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! ज्योतिष-शास्त्र के एम.ए. (तृतीय सेमेस्टर) के तृतीय पत्र के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई में आपका स्वागत है। जैसा कि मैने पूर्व में चर्चा की कि इस खण्ड में हम भारतीय-ज्योतिष-शास्त्र की समृद्ध परम्परा के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे । यह इकाई भी इसी विषय को दृष्टिगत करते हुए लिखी गयी है। इसलिए यद्यपि यह इकाई अन्य इकाइयों के समान ही भारतीय ज्योतिष के इतिहास को अपने में समेटे हुए है तथापि यह अन्य इकाइयों से कुछ भिन्न और बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह कैसे भिन्न है? वस्तुत: इस इकाई में हम भारतीय ज्योतिष के इतिहास के सबसे प्रतिष्ठित काल-खण्ड के खगोलज्ञों और गणितज्ञों की चर्चा करेंगे। यह सबसे प्रतिष्ठित क्यों माना जाए? इस काल-खण्ड की क्या विशेषताएं हैं? इस खण्ड के प्रमुख गणितज्ञ और वैज्ञानिक कौन हैं? इन सब प्रश्नों के उत्तर आपको इकाई के अध्ययन से अवश्य ही मिलेंगे । हां..... एक बात जो प्रस्तावना में और कहनी है, वह है इस इकाई के महत्व से सम्बन्धित। देखिए...हर शास्त्र, भाषा, संस्कृति या सभ्यता के इतिहास में उत्पत्ति, चरम और पतन ये तीन बड़ी ही महत्त्वपूर्ण घटनाएं होती हैं और इनमें से प्रत्येक घटना का सभी परिप्रेक्ष्यों से अध्ययन निश्चय ही तत्सम्बन्धी इतिहास के प्रति हमारी समझ को बढ़ाता है। यह इकाई इसलिए महत्वपूर्ण है क्यूंकि इसमें जिस काल-खंड की चर्चा होगी उसमें भारतीय ज्योतिष के, विशेषकर सिद्धान्त-स्कन्ध के चरमोत्कर्ष की गाथा समाई हुई है, जिसके नायक भास्कर द्वितीय (भास्कराचार्य) रहे हैं।

यद्यपि इस कालखंड में अनेकों प्रख्यात ज्योतिर्विद हुए हैं किन्तु आपके स्वाध्याय-सामग्री की सीमा को देखते हुए उनमें से तीन विद्वानों भास्कराचार्य, मकरान्दाचार्य और गणेश दैवज्ञ का ही संक्षिप्त परिचय इस इकाई में प्रस्तुत किया जा रहा है । संक्षिप्त इसलिए क्यूंकि इनमें से एक-एक का विस्तृत वर्णन स्वयं में एक-एक खण्ड की अपेक्षा रखता है । अत: इन विद्वानों के विषय में विस्तृत ज्ञान हेतु इनके मूल ग्रंथों और भारतीय-ज्योतिषेतिहास के मूल ग्रंथों को देखना चाहिए।

३.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्योतिष के सिद्धान्त-स्कन्ध को विस्तारपूर्वक निरूपित कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- भारतीय ज्योतिष के मध्यकालीन इतिहास का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे।
- भास्कराचार्य का परिचय दे सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- लीलावती, बीजगणित और सिद्धान्त शिरोमणि में वर्णित विषयों को बता सकने में समर्थ

होंगे।

- मकरान्दाचार्य के ग्रन्थ का स्वरूप को समझा सकने में कुशल हो सकेंगे।
- गणेश दैवज्ञ और उनकी कृतियों के वर्णन में निपुण हो सकेंगे।

३.३ सिद्धान्त स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय –

प्रिय बंधुओं! सिद्धान्त स्कन्ध के उन्नति-काल के पूर्व आइए थोड़ी चर्चा सिद्धान्त स्कन्ध के स्वरूप पर कर लेते हैं। जैसा कि आप जानते हैं ज्योतिष त्रि-स्कन्धात्मक है। इस संबन्ध में स्वयं नारद जी का वचन है-

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिषशास्त्रमकल्मषम्।।

(नारदसंहिता, १/४)

अर्थात् सिद्धान्त, संहिता और होरा इन तीन स्कन्धों से युक्त वेद-पुरुष के निर्मल नेत्र के रूप में प्रतिष्ठित यह ज्योतिष शास्त्र है।

इन स्कंधों में सिद्धान्त का क्या स्वरुप है – ऐसी जिज्ञासा आपके मन में उठना स्वाभाविक है। यदि एक वाक्य में कहें तो ग्रहों की गति, स्थिति, ग्रहण-काल आदि की गणना ज्योतिष के जिस स्कन्ध में की जाए वह 'सिद्धान्त' कहलाता है। सिद्धान्त के संक्षिप्त परिचय को बड़े ही सुन्दर शब्दों में परिभाषित करते हुए स्वयं भास्कर कहते हैं –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेदः क्रमाच्,
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितैश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते,
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गणिताध्याय, मध्यमाधिकार १/५)

अर्थात् त्रुटि से लेकर प्रलय तक की काल गणना (कलना) और उस काल को मापने के विविध तरीके, ग्रहों के (द्युसदां) विभिन्न राशि या नक्षत्रों में संचरण (चार), प्रश्न तथा उत्तर इन दो प्रकार की गणित, पृथ्वी, नक्षत्र (धिष्ण्य), और ग्रहों की आकाशीय स्थिति (का ज्ञान) और विविध यन्त्रों (क्रान्ति, चर, अक्षांश आदि के ज्ञान हेतु) का अध्ययन जिस गणित-स्कंध में करते हैं उसे ही विद्वान् लोग 'सिद्धान्त' कहते हैं।

उपरिलिखित श्लोक की टीका में ही नृसिंह दैवज्ञ सिद्धान्त को परिभाषित करते हुए कहते हैं – '**व्यक्ताव्यक्तखगोलवासनामयः सिद्धान्त आदिरिति**'। अर्थात् व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप खगोलशास्त्र-सम्बन्धी टीका से युक्त सिद्धान्त नामक स्कन्ध (सभी स्कन्धों में) प्रथम है।

इस सिद्धान्त के ही तीन अवान्तर भेद हैं – १. सिद्धान्त, २. तन्त्र, ३. करण।

सिद्धान्त - जिस भेद में कल्प से लेकर अभीष्ट समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि ज्ञान किया जाए वह 'सिद्धान्त' इस नाम से प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रंथों में सूर्य-सिद्धान्त, भास्कराचार्य का सिद्धान्त शिरोमणि, कमलाकर का सिद्धान्त तत्त्व विवेक, सामंत चंद्रशेखर का सिद्धान्त दर्पण आदि प्रमुख हैं।

तन्त्र – जिस भेद में अभीष्ट युग से लेकर वर्तमान समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि ज्ञान किया जाए वह 'तन्त्र' इस नाम से प्रसिद्ध है। लल्ल का शिष्यधीवृद्धिदम् प्रसिद्ध तन्त्र ग्रन्थ है।

करण – जिस भेद में अभीष्ट शक से लेकर वर्त्तमान समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि ज्ञान किया जाए वह 'करण' इस नाम से प्रसिद्ध है। भास्कर का करणकुतूहलम्, शतानन्द का भास्वती, गणेश का ग्रहलाघवम्, केतकर का केतकीग्रहगणितम् इत्यादि प्रसिद्ध करण ग्रन्थ हैं।

यद्यपि सभी स्कन्ध अत्यन्त महत्व के हैं किन्तु बिना सिद्धान्त स्कंध के ज्ञान के व्यक्ति का ज्योतिष ज्ञान अपूर्ण है। भास्कराचार्य ने तो सिद्धांत-ज्ञान से रहित मनुष्य को दीवार पर टंगे राजा के चित्र के समान महत्वहीन कह दिया है –

जानन् जातकसंहिता सगणितस्कन्धैकदेशा अपि,
ज्योतिःशास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तभेदवितथं नो वेत्ति भित्तौ यथा,
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः॥

(सिद्धान्तशिरोमणि, गणिताध्याय, मध्यमाधिकार १/७)

अर्थात् जातक (होरा) और संहिता इन स्कंधों को जानता हुआ भी जो अनेक (भेद के आधार पर मुख्यतः तीन और विषय के आधार पर अनेकों) प्रकार के गणितीय भेदों से युक्त इस सिद्धान्त स्कंध को नहीं जानता है (नो वेत्ति) वह ज्योतिषशास्त्रीय सारपूर्ण गम्भीर प्रश्नों (ज्योतिःशास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेषु) के उत्तर में विचारशून्य होता हुआ उसी प्रकार का महत्वहीन या प्रभावहीन (अकिञ्चित्कर) माना जाता है जैसा कि दीवार पर (भित्तौ) चित्र के रूप में टंगा हुआ राजा

या बहुत ही सुन्दरता से गढ़ा किन्तु काठ का शेर (कंठीरव) (महत्वहीन अथवा प्रभावहीन होता है)।

इसका कारण यही है की बिना गणित या खगोल के स्पष्ट ज्ञान के ग्रहों की स्पष्ट आकाशीय स्थिति जानना संभव नहीं है, जिसके अभाव में ग्रहों के व्यक्तिगत (होराशास्त्रीय) या समष्टिगत (संहितास्कंधात्मक) प्रभाव का भी सही आंकलन और अध्ययन सम्भव नहीं है। इसी बात को भास्कर अपने सिद्धान्त शिरोमणि में कहते हैं –

ज्योतिषशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते,
नूनं लग्नबलाश्रितं पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयम्।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, गोलप्रशंसाध्याय १/७)

अर्थात् ज्योतिष-शास्त्र के फल को पुराने विद्वानों ने ‘आदेश’ कहा है जो निश्चित ही लग्न के बल पर आधारित है और वो लग्न, स्पष्ट ग्रह (के साधन) पर आधारित है।

तो मित्रों, आप स्वयं सोचिए की जिस काल में सिद्धान्त स्कन्ध को इतना महत्वपूर्ण माना जाता था उस काल में उस स्कन्ध की उन्नति क्यूं नहीं होगी। इस कालखण्ड में सिद्धांत के सभी भेदों में ग्रंथों की अत्यधिक रचना हुई। तो आइए, कुछ बात उस काल-खण्ड की भी हो जाए।

३.४ सिद्धान्त स्कन्ध का उन्नतिकाल -

मित्रों! यद्यपि भारतीय ज्योतिष का प्रत्येक पक्ष अपने आप में बड़ा ही महत्वपूर्ण, प्रशंसनीय और सम्पूर्ण ज्योतिष-वाङ्मय में अपना विशेष स्थान रखने वाला है तथापि इसके सिद्धान्त पक्ष ने पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान १७वीं से १९वीं शताब्दी में अपनी ओर सर्वाधिक खींचा। चूंकि औद्योगिक क्रान्ति और उसके बाद के समय ने यूरोप का नज़रिया पूरी तरह से बदल कर रख दिया था और वे अध्ययन के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बहुत ही महत्त्व देने लगे थे। ऐसे में भारत; जिसको वे अनपढ़ों, सपेरों और मदारियों का देश समझते थे, के आचार्यों और ग्रंथों के सम्पर्क में आने से न केवल उनका भ्रम बहुत तीव्रता से टूटने लगा बल्कि उन्होंने भारतीय शास्त्रों विशेषकर वैज्ञानिकता का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथों के अध्ययन, शोध और प्रकाशन पर बड़ी ही गंभीरता से ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया। कालान्तर में तो भारतीयों के ज्ञान, प्रतिभा और उनके शास्त्रों की गंभीरता और विशदता से डरकर पाश्चात्य लोग भारतीयों के प्रति दुर्भावना-ग्रस्त हो गए। फलस्वरूप उन्होंने भारतीयों को न केवल आर्थिक और सामाजिक दास बनाना आरम्भ किया बल्कि भारत की बौद्धिक सम्पदा का निरादर करने के लिए भारतीय ग्रंथों की मनमाने ढंग से व्याख्याएं करके उन्हें स्तरहीन या ‘बेबीलोनिया इत्यादि अन्य सभ्यताओं से प्राप्त किया हुआ’ बताना आरम्भ कर दिया। इन विद्वानों में व्हिटनी, बर्जेस, कोलब्रुक, मैक्समूलर इत्यादि मुख्य रहे।....

हालांकि २० वीं शताब्दी आते-आते स्थितियां थोड़ी बदलीं और न केवल भारतीय विद्वानों ने अपितु स्वयं कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारतीय ज्ञान संपदा को विश्व पटल पर उसका वास्तविक स्थान देने और उसे प्रतिष्ठित करने का प्रयास आरम्भ किया। वर्तमान २१ वीं शताब्दी तो अपने दूसरे दशक में ही भारतीय ज्ञान-विज्ञान की ही शताब्दी मानी जाने लगी है। ....बहरहाल उपर्युक्त अतिसंक्षिप्त ऐतिहासिक परिदृश्य को प्रस्तुत करने का उद्देश्य भारतीय ज्योतिष के सिद्धांत काल की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता के मूलभूत कारणों की ज़मीन तलाशना था। और अगर संक्षेप में कहा जाए तो सिद्धान्त स्कन्ध की वैज्ञानिकता और गणितीय प्रकृति ने तत्कालीन विद्वानों का ध्यान अपनी ओर खींचा, जिसके कारण यह काल-खण्ड आज भी अत्यन्त लोकप्रिय है।

प्रिय अध्येता, यहाँ आपके मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या इसी काल-खण्ड में भारतीय-खगोलीय-गणित की प्रगति हुई, उसके पहले या बाद में नहीं? और यदि ऐसा नहीं है तो यह उन्नतिकाल कैसे माना जाए?

इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढना तभी सम्भव है जब हमें इस काल-खंड की सीमा ज्ञात हो। इस सम्बन्ध में कहना यह है कि जहां तक प्रश्न सीमा का है, १००० शक से लेकर १६०० शक तक, यह कालखण्ड लगभग ६०० वर्षों का है। विद्वानों की बात करें तो **भास्कराचार्य** से लेकर **नित्यानंद** तक के मुख्य गणितज्ञ और खगोलवेत्ता इस कालखण्ड में समाहित हैं।

यह कहना तो कतई उचित नहीं होगा कि भारतीय-सिद्धान्त (खगोल)-ज्योतिष के क्षेत्र में इस काल-खण्ड से पूर्व या पश्चात् कार्य नहीं हुआ या प्रगति नहीं हुई। हां, लेकिन इतना कहना अवश्य है कि इस काल-खण्ड में सिद्धान्त-ज्योतिष के क्षेत्र में अन्य काल खण्डों की अपेक्षा न केवल अधिक कार्य हुआ अपितु प्रयोगों और गणित के आधार पर विद्वानों में स्व-स्थापित सिद्धान्तों और पक्षों के मण्डन और दूसरे के पक्षों के खण्डन की परम्परा बड़ी ही समृद्ध रही। जिसने खगोलीय ज्योतिष के क्षेत्र में मौलिक भारतीय-चिन्तन-सरणि को अत्यन्त समृद्ध और प्रवाहपूर्ण बनाया। इसमें अनेकों प्रतिभासम्पन्न खगोलज्ञों की विचार-तरंगें समय-समय पर अपनी उद्दाम गति से खगोल-रसिकों को आप्लावित और आनन्दित करती रहीं। इस अवधि की रचनाओं ने न केवल भारतीय ज्योतिष की प्रतिष्ठा सर्वत्र बढ़ाई अपितु अन्य देशों के ज्योतिष-सिद्धांतों को भी प्रभावित किया। इस कालखण्ड ने भारतीय विद्वानों की रुचि नक्षत्र-दर्शन और पञ्चांग निर्माण में बढ़ाई। परिणामस्वरूप विद्वानों में 'करण-ग्रंथों' के निर्माण की होड़ सी लग गयी। इस तरह देखा जाए तो, एक ही तरीक़े के सिद्धान्त-ग्रंथों की (जिसमें गणित पर अधिक ज़ोर हो, जैसा कि आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों में देखने को मिलता है) रचना से आगे बढ़कर पंचांगों के निर्माण हेतु सबल प्रायोगिक (खगोलीय) पक्षों

से युक्त ग्रंथों (यथा – सिद्धांत शिरोमणि) की रचना निश्चय ही भारतीय-ज्योतिष, विशेषकर सिद्धांत-ज्योतिष के उन्नति का ही परिचायक है। इस नवीन दृष्टिकोण ने आगे चलकर ग्रहों के मन्दोच्च-नीच-पातादि सम्बन्धी सारिणी के निर्माण और उसकी शुद्धता के ज्ञान हेतु वेध-शाला-निर्माण, दृग्गणितैक्यता विचार और निरयण-सायन आदि विशुद्ध खगोलीय विषयों को भारतीय-ज्योतिष-जगत् के अध्ययन और शास्त्रार्थ का केन्द्र बनाया। अत: विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना स्वाभाविक है कि यह काल-खण्ड निश्चय ही सिद्धान्त-ज्योतिष का उन्नति-काल होने के कारण भारतीय ज्योतिष के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है जिसने न केवल भारतीय-ज्योतिष अपितु संपूर्ण भारतीय-वाङ्मय पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

मित्रों, साहित्य-जगत में यदि कोई काल-खण्ड महत्वपूर्ण माना जाए तो उसमें कारण निश्चय ही उस अवधि की कुछ कालजयी रचनाएं और उनके प्रणेता अद्भुत व्यक्तित्व रहते हैं। यह काल-खण्ड भी इस बात का अपवाद नहीं है। इस कालखण्ड में अनेकों विद्वानों ने अपनी विशिष्ट रचनाधर्मिता से ज्योतिषशास्त्र रूपी महासमुद्र को समृद्ध बनाया। इन विद्वानों में **भोजराज**, **शतानंद**, **महेश्वर**, **भास्कराचार्य**, **महादेव**, **पद्मनाभ**, **गंगाधर**, **मकरन्दाचार्य**, **केशव**, **गणेश**, **ज्ञानराज**, **अनन्त**, **रघुनाथ**, **कृपाराम**, **दिनकर**, **रामभट्ट**, **श्रीनाथ**, **विष्णु**, **मल्लारि**, **विश्वनाथ**, **रंगनाथ मुनीश्वर**, **कमलाकर** और **नित्यानन्द** प्रमुख हैं। इसके अलावा कई अन्य भी हैं जिनका उल्लेख आपको भारतीय-ज्योतिषेतिहास के ग्रंथों में मिलेगा। ज्योतिष के इतिहास-सम्बन्धी ग्रंथों में आये नामों के अतिरिक्त अन्य भी विद्वान् निश्चय ही हुए जिनकी कृतियों का उल्लेख या तो मिलता नहीं है या मिलता भी है तो वे ग्रन्थ मूल रूप में प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में जो ज्ञात विद्वान् हैं उन सबका संक्षिप्त सार्थक परिचय भी यहाँ केवल एक खंड में दे पाना संभव नहीं है, तो फिर एक इकाई की तो बात ही क्या। इस स्थिति में इस काला-खण्ड के प्रतिनिधिभूत तीन विद्वानों का ही परिचय इस इकाई में दिया जा रहा है। तो फिर प्रश्न यह है कि कौन हैं वो तीन विद्वान् जिनकी चर्चा इस इकाई में की जाएगी? उत्तर है - भास्कराचार्य, मकरान्दाचार्य और गणेश दैवज्ञ। तो आइए, क्रमश: इनकी थोड़ी चर्चा कर ली जाए।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(ट) ज्योतिष वेद-पुरुष का मुख है। ()

(ठ) त्रुटि से प्रलय तक की गणना सिद्धान्त स्कन्ध में नहीं होती है। ()

(ड) सिद्धान्त स्कन्ध के २ भेद माने गए हैं। ()

(ढ) सूर्य-सिद्धान्त एक करण-ग्रन्थ है। ()

(ण) सिद्धान्त के उन्नति का काल १००० शक से आरम्भ होता है। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ सिद्धान्त स्कन्ध के भेदों के विषय में लिखें।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(ट) ग्रहों की गतियों का अध्ययन __________स्कन्ध में किया जाता है।

(ठ) खगोल का ज्ञान ____________स्कंध में किया जाता है।

(ड) अभीष्ट शक से जिसमें गणना हो उसे ________कहते हैं।

(ढ) भास्वती एक _______ग्रन्थ है।

(ण) कमलाकर के ग्रन्थ का नाम _______है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ सिद्धांत के उन्नति-काल के विद्वानों के नाम लिखिए।

____

____

____

____

३.५ भास्कराचार्य (भास्कर द्वितीय) -

भास्कराचार्य भारतीय-ज्योतिष-रूपी आकाश के भास्कर-स्वरूप हैं। विलक्षण प्रतिभा के धनी भास्कराचार्य की गणितीय क्षमता, खगोलीय ज्ञानपरक मेधा और साहित्यिक कौशल अपने आप में अप्रतिम है। जहां एक ओर भास्कर के चक्रवाल, कुट्टक, वर्गप्रकृति इत्यादि गणितीय-कौशल ने गणितीय-विद्वानों को आश्चर्यचकित किया वहीं दूसरी ओर उनके उदयान्तर संस्कार,

लम्बनसंस्कार, ज्योत्पत्ति, प्रत्यब्दशुद्धि इत्यादि ने खगोलीय पंडितों को अपना प्रशंसक बनाया। उनकी बेजोड़ प्रतिभा का एक तीसरा पहलू भी है जो है उनकी काव्यरचना-धर्मिता, जिसने बड़े-बड़े साहित्यिकों से भी अपना लोहा मनवाया। फिर चाहे भुवनकोश-वर्णन हो, या ऋतुवर्णन या लीलावती के सुललित छंदात्मक पद्य, उनकी काव्य-प्रतिभा सर्वत्र आश्चर्यचकित करती है। ऐसे अद्भुत विद्वान् के वरना के बिना भारतीय-ज्योतिष का इतिहास निश्चय ही अपूर्ण माना जाएगा। तो...आइए, भास्कर की प्रतिभा के इन विभिन्न पहलुओं पर थोड़ी चर्चा करते हैं। किन्तु इसके पहले भास्कराचार्य का परिचय भी जानना आवश्यक है।

३.५.१ भास्कराचार्य का परिचय –

भास्कराचार्य ने अपना परिचय स्वयं दिया है। जिसके अनुसार, भास्कराचार्य का जन्म-काल १०३६ शक (१११४ ई.) है –

रसगुणपूर्णमही समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणौ रचितः।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय)

रस (६) गुण (३) पूर्ण (०) मही (१), (अङ्कानां वामतो गतिः इस नियम के अनुसार) १०३६ शक काल में मेरी उत्पत्ति हुई। रसगुण (३६) वर्षों में मेरे द्वारा सिद्धान्त शिरोमणि की रचना की गई है।

करण-कुतूहल ग्रन्थ का आरम्भ ११०५ शक में हुआ था, इसलिए यही इसका रचनाकाल है, जो ११८३ ई. होता है। इससे प्रकट होता है कि करण-कुतूहल की रचना ६९ वर्ष की अवस्था में की गयी थी।

अपने जन्मस्थान, गोत्र और वर्ण की भी जानकारी उन्होंने दी है –

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने,
नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, प्रश्नाध्याय)

अर्थात् मेरा जन्म-स्थान सह्याद्रि पर्वत (सह्यकुलाचल) के निकट 'विज्जडविड' नामक ग्राम में शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मण परिवार में हुआ, जो कि त्रिकालवेत्ता सज्जन ब्राह्मणों का गांव है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी ने अपने ग्रन्थ में महाराष्ट्र के खानदेश के चालिसगांव से १० मील दूर स्थित 'पाटण' में प्राप्त भास्कराचार्य से सम्बन्धित शिलालेखों का ज़िक्र किया है। ये शिलालेख उनके वंशज चांगदेव द्वारा बनवाए गए हैं। दीक्षित जी ने निष्कर्ष रूप में भास्कराचार्य का मूल निवास पाटण

या उसके निकट विजलविड़ माना है और उनके कुल को बड़ा ही सम्मानित और राज्याश्रित बताया है।

इनके पिता का नाम महेश्वर था जिनसे इन्होंने ज्योतिष की शिक्षा प्राप्त की, चूंकि वह स्वयं एक विद्वान् ज्योतिषी थे। स्वयं भास्कर ने अपने पिता के लिए 'दैवज्ञचूडामणि:' इस विशेषण का प्रयोग किया है।

३.५.२ भास्कराचार्य का कर्तृत्व –

प्रिय मित्रों! जैसा कि पूर्व में ही मैंने चर्चा की कि भास्कर का कर्तृत्व भारतीय ज्योतिष में अपनी अलग ही पहचान रखता है। सुललित पद्य-रचना व उच्च कोटि की काव्य-शैली भास्कराचार्य की पहचान है, जिसे आजकल की भाषा में 'ट्रेडमार्क' कहते हैं। काव्य की यह सरसता कठिन और दुरूह विषय को समझने में उसी प्रकार से सहायता करती है जैसे धूप में चलने वाले पथिक की आरामदायक छाँव। बड़े-बड़े वृत्तों में रचनाएं अपने में बहुत सारा गंभीर ज्ञान समेटे रहती हैं। और चूंकि पद्य बड़े हैं इसलिए विषय का आवश्यकतानुसार विस्तार भी ग्रन्थों में हुआ है।

इनके बनाये चार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं : १- सिद्धान्त-शिरोमणि, दो भागों में, जिनके नाम 'गणिताध्याय' और 'गोलाध्याय' हैं, २ - लीलावती, ३- बीजगणित और ४- करण-कुतूहल। सिद्धान्तशिरोमणि पर इन्होंने स्वयं 'वासना भाष्य' नामक टीका भी लिखी है। लीलावती और बीजगणित भी वास्तव में सिद्धान्त-शिरोमणि के ही अंग माने गये हैं। ऐसा स्वयं भास्कर ने इन ग्रंथों के अन्तिम में लिखा है। इसका कारण पर विचार करें तो यह बात स्पष्ट होती है। वस्तुत: सिद्धान्त-ज्योतिष का पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब विद्यार्थियों को पाटीगणित का, जिसमें क्षेत्रफल, घनफल आदि विषयों का भी समावेश है, तथा बीजगणित का आवश्यक ज्ञान हो। आइए, उनकी कृतियों पर संक्षेप में दृष्टिपात करते हैं।

३.५.२.१ लीलावती -

लीलावती नामक ग्रंथ में लीलावती नामक कन्या को संबोधन करके प्रश्नोत्तर के रूप में पाटीगणित, क्षेत्रमिति, आदि के प्रश्न बहुत रोचक ढंग से बताये गये हैं। इसमें २७८ पद्य हैं। इसमें आरम्भ में विविध मापन इकाइयां और संख्या का वर्णन है। पूर्णांकों और भिन्न संख्याओं के योग, अंतर, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल का वर्णन है जिन्हें भास्कर ने 'परिकर्माष्टक' कहा है। इसके अतिरिक्त त्रैराशिक, श्रेढी-व्यवहार क्षेत्र-व्यवहार, छाया-व्यवहार, कुट्टक आदि विषय इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। अंत में गणितपाश (क्रमचय) नामक एक अध्याय और है। इसकी भाषा बड़ी ललित है। इसकी संस्कृत और हिंदी टीकाएं भी मिलती हैं। ज्योतिष और विशेषकर सिद्धांत-ज्योतिष एवं गणित

के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक पाठ्यक्रम के रूप में निर्धारित भी है। इसकी कई प्राचीन टीकाएँ भी हैं, जैसे गंगाधर की 'गणितामृतसागरी' (१३४२ श॰), ग्रह-लाघवकार गणेश दैवज्ञ की 'बुद्धिविलासिनी' (१४६७ शक), धनेश्वर दैवज्ञ की 'लीलावतीभूषण', मुनीश्वर की 'लीलावतीविवृति' (१५४७ शक), महीधर की 'लीलावतीविवरण', रामकृष्ण की 'गणितामृतलहरी', नारायण की पाटीगणित-कौमुदी, रामकृष्ण देव की 'मनोरंजना', रामचंद्र कृत 'लीलावती-भूषण', विश्व रूप की 'निसृजृ-दूती', सूर्यदास की 'गणितामृतकूपिका' इत्यादि। वर्तमान काल में पं. बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी और पं. सुधाकर द्विवेदी की उपपत्ति सहित टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

३.५.२.२ बीजगणित -

इसमें अव्यक्त संख्याओं का धनर्णषड्विध, खषड्विध, करणीषड्विध, एकवर्ण समीकरण, अनेकवर्ण समीकरण एकवर्ण मध्यमाहरण, अनेकवर्ण मध्यमाहरण, चक्रवाल, कुट्टक, वर्गप्रकृति इत्यादि विषय वर्णित हैं। भास्कराचार्य के बीजगणित पर कृष्ण दैवज्ञ की बीजनवांकुर टीका (शक १५२४) और सूर्यदास की टीका प्रसिद्ध है। उपपत्ति के साथ इसकी टीका पं. सुधाकर द्विवेदी ने भी की है। इनके अतिरिक्त और भी कई टीकाएँ हैं।

३.५.२.३ सिद्धांतशिरोमणि –

यह सिद्धांत ज्योतिष का एक उत्तम और प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें ज्योतिष सिद्धान्त की सभी बातें विस्तार और उपपत्ति के साथ बतायी गयी हैं जिनका वर्णन ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त अथवा महासिद्धांत में है। इसकी अनेक टीकाएं हैं। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की भी टीका इस पर है। नृसिंह ने वासनाकल्पलता अथवा वासनावर्तिका नामक टीका १५४३ शक में लिखी थी, मुनीश्वर या विश्वरूप की मरीचि नामक टीका बहुत उत्तम और विस्तार के साथ १५५७ शक में लिखी गयी थी। आर्यभटीय के टीकाकार परमेश्वर ने सिद्धान्त-दीपिका नामक टीका की थी। रंगनाथ की मितभाषिणी नामक टीका शक १५८० के लगभग लिखी गयी थी।

गोलाध्याय

सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में चौदह (१४) अध्याय हैं, जिनमें से प्रथम 'गोलप्रशंसा' है। इसमें मंगलाचरण के बाद ज्योतिषी हेतु कर्तव्य-अकर्तव्य की बात कही गयी है। विशेष बात यह है की इसमें शास्त्रज्ञ होने के लिए व्याकरणज्ञ होने पर बल दिया गया है। आगे स्पष्ट शुभाशुभ-फल-कथन के लिए भी गणित और गोल के ज्ञान को आवश्यक कहा है। अंतिम श्लोक में भास्कराचार्य ने अपनी पुस्तक की प्रशंसा इन शब्दों में की है :

गोलं श्रोतुं यदि तव मतिर्भास्करीयं शृणु त्वं
नो संक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तर: शास्त्रतत्त्वम्।
लीलागम्य: सुललितपद: प्रश्नारम्य: स यस्माद्
विद्वन! विद्वत्सदसि पठतां पंडितोक्तिं व्यनक्ति।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, गोलप्रशंसाध्याय, ९)

अर्थात् हे पंडित! यदि तुम्हारी इच्छा (तव मति:) गोल या खगोल-विज्ञान को सुनने की है तो मेरे इस ग्रन्थ को सुनो। वह न तो संक्षिप्त है और न व्यर्थ बहुत विस्तृत (बहुवृथाविस्तर:) ही है। उसमें शास्त्र का तत्त्व है। उसमें सुन्दर पद (सुललितपद:) हैं और मनोरम प्रश्न भी हैं। वह सुगमता से समझी जा सकती है (लीलागम्य:) और उसे पंडितों की सभा में (विद्वत्सदसि) सुनाने से विद्वत्ता भी प्रकट होती है।

दूसरे 'गोलस्वरूपप्रश्न' नामक अध्याय में दस श्लोक हैं जो प्रश्न रूप में हैं। इनमें कुछ क्लिष्ट प्रश्न भी हैं, जैसे

भवलयस्य किलार्कलवा: समा: किमसमै: समयै: खलु राशय:।
समुपयान्त्युदयं किमु गोलविन्न विषयेष्वखिलेष्वपि ते समा:।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय,गोलस्वरूपप्रश्नाध्याय, ७)

अर्थात् हे गोलज्ञ! रविमार्ग या राशिचक्र के (भवलयस्य) बराबर-बराबर बारह भाग (अर्कलवा: समा:), जो बारह राशियाँ है, वह समान समय में क्यों (किमु) नहीं उदित (समुपयान्त्युदयं) होते हैं? और वे सब देशों में एक साथ क्यों नहीं उदित होते?

भुवनकोश नामक तीसरे अध्याय में पृथ्वी और विश्व का स्वरूप बताया गया है। जैसे पृथ्वी क्रमश: चंद्र, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, बृहस्पति और नक्षत्रों की कक्षाओं से घिरी हुई है। इसका कोई आधार नहीं है, केवल अपनी शक्ति से स्थिर है। इसके पृष्ठ पर सदा असुर, मनुष्य, देव और दैत्य आदि से युक्त विश्व स्थित है। जिस प्रकार कदंब के फूल की गाँठ चारों ओर केसरों से घिरी रहती है वैसे ही पृथ्वी भी चारों ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, यज्ञशाला आदि से घिरी है। पृथ्वी के निराधारत्व से सम्बन्धित मत को उपस्थापित करते हुए यथासम्भव पौराणिक मतों से सामंजस्य बैठाने की कोशिश भास्कर ने की है। इसी अध्याय में पृथ्वी की स्वाभाविक प्रकृति का उल्लेख करते हुए उसके गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का भी वर्णन भास्कर करते हैं।

यदि भूमि किसी साकार वस्तु के आधार पर स्थित है तो उस आधार का भी कोई आधार होना चाहिए। यों प्रत्येक वस्तु के लिए किसी दूसरे आधार के कल्पना करते चलें तो अनवस्था हो

जायेगी। यदि अंत में निजी शक्ति की कल्पना ही करनी है तो वह पहले ही से क्यों ने की जाय? भास्कर ने इसी अध्याय में पृथिवी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का उपस्थापन किया।

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरुं स्वाभिमुखम् स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्वपतत्वियं खे।।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, भुवनकोश, ६)

अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है, उससे वह आकाश में फेंकी गयी भारी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है और वह भारी वस्तु गिरती हुई दिखायी पड़ती है, परन्तु पृथ्वी कहीं नहीं गिर सकती, क्योंकि आकाश सब ओर समान है।

भास्कराचार्य ने बौद्धों के कथन 'पृथ्वी गिरती है' और जैनों के कथन 'दो सूर्य हैं, दो चंद्र हैं, जिनका एकान्तर से उदय होता है' का बहुत बलपूर्वक खंडन किया है। आगे भास्कर ने पृथ्वी के मापन की विधि का वर्णन करते हुए कहा है कि भूमध्य रेखा से उज्जयिनी की दूरी नापकर उसे १६ से गुणा करने पर पृथ्वी की परिधि ज्ञात होगी, क्योंकि उज्जयिनी का अक्षांश २२-१/२ अंश, अर्थात् ३६० अंश का १/१६ हिस्सा है। इसके बाद लंका, यमकोटि, रोमकपत्तन, सिद्धपुर, सुमेरु और बडवानल की परिभाषाएँ या स्थितियाँ बतायी गयी हैं। फिर पौराणिक परम्परा के अनुपालन में कुछ भौगोलिक अवधारणाएं प्रस्तुत की गई हैं। आगे भूमध्य-रेखा पर राशिचक्र की स्थिति और इसके बाद ध्रुव के उन्नतांश और स्थान के अंक्षांश में संबंध बताया गया है। फिर पृथ्वी की परिधि, उसका व्यास और उसके पृष्ठ का क्षेत्रफल बताया गया है। इसमें परिधि और व्यास का अनुपात बहुत शुद्ध (३.१४१६) लिया गया है। भास्कराचार्य ने पृष्ठ के क्षेत्रफल के संबंध में लल्लाचार्य की गणना को अशुद्ध बताया है क्योंकि लल्ल ने अशुद्ध सूत्र के अनुसार परिधि से वृत्त के क्षेत्रफल को गुणा किया था। भास्कराचार्य ने परिधि को व्यास से गुणा किया है, जो पूर्णतया शुद्ध है।

इसके अतिरिक्त गोलाध्याय में मध्यगतिवासना, छेद्यकाधिकार, ज्योत्पत्तिवासना, गोलबन्धाधिकार, त्रिपश्नवासना, ग्रहणवासना, उदयास्तवासनाध्याय, शृङ्गोन्नतिवासनाध्याय, यन्त्राध्याय और ऋतुवर्णनाध्याय हैं।

गणिताध्याय

यह भी सिद्धान्तशिरोमणि का एक भाग है। इसमें ग्रहों के साधन अर्थात् स्पष्ट राश्यादि ज्ञान के लिए आवश्यक गणित पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। इसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, चंद्रग्रहणाधिकार, इत्यादि अध्याय वर्णित हैं। मध्यमाधिकार में ९ प्रकार की काला मापन पद्धतियों का विस्तृत वर्णन है –

एवं पृथङ्गानवदैवजैव पैत्रार्क्षसौरैन्दवसावनानि।
ब्राह्मं च कालं नवमं प्रमाणं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः।

(सिद्धान्तशिरोमणि, गणिताध्याय, कालमानाध्याय)

अर्थात् इस प्रकार (पूर्वकथित वर्णन) से काल के मापन हेतु ९ पद्धतियां प्रचलित हैं, जो इस प्रकार हैं – १. मनुमान से सम्बन्धित (मानव), २. देवताओं के मान से सम्बन्धित (दैव या दिव्य), ३. गुरु की गति से सम्बन्धित (जैव या गौरव), ४. पितरों के दिन इत्यादि के आधार पर (पैत्र), ५. नक्षत्र के दिन इत्यादि के आधार पर (नाक्षत्र या आर्क्ष), ६. सूर्य से सम्बन्धित (सौर), ७. चन्द्रमा से सम्बन्धित (चान्द्र या ऐन्दव), ८. सूर्योदय पर आधारित (सावन), ९. ब्रह्मा के दिन आदि के आधार पर (ब्राह्म) ।

इनमें से चार सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन ये नित्य मनुष्यों के द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं।

इसके अतिरिक्त अहर्गण-साधन, अक्षांश, देशांतर, स्पष्टपरिधि, अधिमास आदियों की चर्चा मध्यमाधिकार में है। स्पष्टाधिकार में ज्या-कोज्या-क्रान्तिज्या इत्यादि का साधन, स्पष्ट ग्रह हेतु मंदकर्ण, शीघ्रकर्ण, मंदफल, शीघ्रफल इत्यादि का संस्कार, भुजान्तर, उदयान्तर इत्यादि संस्कार,स्पष्ट-ग्रह-गति-साधन का वर्णन है। त्रिप्रश्नाधिकार में पलभा, उदयासव, लग्न-साधन दशमलग्न साधन, अक्षक्षेत्र, अयनांश इत्यादि का वर्णन है। इसी प्रकार अन्य अध्यायों में खगोलीय विषय बड़ी ही विशदतापूर्वक वर्णित किये हैं भास्कराचार्य ने।

३.५.३ भास्कराचार्य का वैशिष्ट्य –

लेखक का वैशिष्ट्य उसकी रचना में ही निहित होता है अत: भास्कर की रचनाओं से ही उनकी अपनी विशेषता जानी जा सकती है। उनके गोल एवं गणित संबंधी विचार नई उपपत्तियों से युक्त हैं। इसी कारण सिद्धांत शिरोमणि की ख्याति इतनी अधिक है और दुनिया के कई भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। गोल इन्हें करतलामलकवत था। केवल इस एक मात्र ग्रन्थ के अध्ययन कर लेने से भारतीय ज्योतिष का सर्वस्व ज्ञात हो जाता है। त्रिप्रश्नाधिकार में इन्होंने बहुत सी नवीन रीतियाँ लिखी हैं और उसमें अनेक विषयों में अपनी दक्षता प्रकट की है। उन्होंने शंकु संबंधी इष्टदिक्छायासाधन किया है जो उनके पूर्ववर्तियों ने नहीं किया। उन्होंने पातसाधन की भी नवीन रीति प्रस्तुत की। इसमें उन्होंने प्रतिपादित किया कि सूर्य की गति क्रांतिवृत्त में सदा समान नहीं रहती है। इष्टकालीन मध्यम और स्पष्ट रवि के अंतर अर्थात फल संस्कार के अनुसार स्पष्ट सूर्योदय मध्य से बाद में या पहले होता है। इस संबंधी संस्कार को भुजान्तर संस्कार कहते हैं। उदयान्तर इनका नवीन शोध है। पृथ्वी अपनी धुरी पर विषुवत वृत्त में घूमती है, क्रांतिवृत्त में नहीं। अत: क्षितिज में

क्रान्तिवृत्तीय ३० अंश का उदय होने में जितना समय लगता है उतना समय सदा नाडीवृत्त के ३० अंश को उदित होने में नहीं लगता है। इससे सम्बन्धित संस्कार ही उदयान्तर है।

इसके अतिरिक्त 'करणकुतूहल' नामक करण ग्रन्थ की रचना भी भास्कर ने ११०५ शक में की जिसमें 'क्षेपक' शक ११०४ फाल्गुन कृष्ण ३० अमावस्या, गुरुवार के सूर्योदयकालीन लिए गए हैं। क्षेपक कहते हैं किसी अभीष्ट शक के निश्चित तिथि के निश्चित समय में साधित ग्रहों की राश्यादि स्थिति को। क्षेपक और ध्रुवक ये विषय आगे के विवरणों में और स्पष्ट किये जाएंगे।

उन्होंने यत्र-तत्र पुराण के मत का समावेश करने का पूर्ण प्रयास किया है। दुराग्रह के लिए उनके ग्रन्थ में स्थान नहीं है बल्कि पग-पग पर उनकी उदारता ही प्रकट होती है। उनकी काव्य-शैली उच्च कोटि की है और कहीं-कहीं तो ये बड़े-बड़े कवियों को चुनौती सी देती है। ये सही है की उन्होंने वेध पर काम नहीं किया किन्तु युक्तिपूर्ण विशद खगोलीय ग्रन्थ के लिए भारतीय ज्योतिष उनका सदैव ही ऋणी रहेगा।

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे(√)का और गलत के आगे(×)का चिह्न लगाएं –

(क) भास्कराचार्य का जन्म बिजनौर में हुआ था। ()

(ख) भास्कर के पिता का नाम महेश्वर था। ()

(ग) गोलाध्याय में १४ अध्याय हैं। ()

(घ) पृथ्वी के आकर्षण-शक्ति का सिद्धान्त भास्कराचार्य ने नहीं दिया था। ()

(ङ) करणकुतूहल में क्षेपक ११०० शक के हैं। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ गोलाध्याय के विषयों को संक्षेप में लिखें।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) भास्कर का जन्म-काल__________ शक है।

(ख) भास्कर से सम्बन्धित शिलालेख उनके वंशज ____________के द्वारा बनवाए गए।

(ग) लीलावती पर गणेश दैवज्ञ की _________ टीका है।

(घ) गुरु की गति से सम्बन्धित काल मान को ________कहते हैं।

(ङ) भास्कर ने ________संस्कार का मौलिक रूप से प्रतिपादन किया।

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ भास्कराचार्य के वैशिष्ट्य को लिखिए।

____

____

____

____

३.६ मकरन्दाचार्य -

मकरंदाचार्य का नाम भारतीय ज्योतिष के इतिहास में बड़ी ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इसका कारण यह है कि मकरंद ने शक १४०० (१४७८ ई.) में सूर्य सिद्धांत के अनुसार तिथ्यादि साधन के लिए या यूं कहें की पंचांग बनाने हेतु अपने ही नाम की एक सारिणी का निर्माण काशी में किया था। जैसा की ग्रंथकार स्वयं कहते हैं –

श्रीसूर्यसिद्धान्तमतेन सम्यग्विश्वोपकाराय गुरूपदेशात्।
तिथ्यादिपत्रं वितनोति काश्यामानन्दकन्दो मकरन्दनामा।।

अर्थात् श्रीसूर्य सिद्धान्त के आधार पर, गुरु से ज्ञान प्राप्त करके यह (मैं यानी मकरन्द) विश्व के उपकार के लिए काशी में लोगों की आनन्दित करने वाला, मकरन्द इस नाम से, तिथ्यादि-पत्रक (पंचांग-साधक) प्रसारित कर रहा हूँ (बना रहा हूँ)।

इस सारिणी को ही आधार बनाकर काशी और मिथिला आदि प्रांतों में पूर्व में पंचांग बनाए जाते थे और वर्त्तमान में भी बनाये जा रहे हैं। इस सारिणी पर दिवाकर की 'मकरन्द-विवरण' नामक टीका भी प्राप्त होती है जो कि विश्वनाथ के द्वारा प्रदर्शित उदाहरणों के साथ प्रकाशित हुई है। गोकुलनाथ ने १६८८ शक में इसकी उपपत्ति भी की है। इस सारिणी का अनुवाद अंग्रेज़ी में बेंटली ने किया था जिसका कालान्तर में विस्तार करते हुए पं. रघुवीरदत्त ज्योतिषी ने 'सिद्धखेटिका' नामक एक सारिणी का निर्माण किया जो शक १८०५ (१८८३ ई.) में भारतमित्र यन्त्रालय से प्रकाशित हुई थी। इस सारिणी में तिथि, नक्षत्र, योगों और ग्रहों की दैनिक गतियां दी गयी हैं जिससे इन विषयों की

स्पष्ट गणना बहुत ही सुगमतता से की जा सकती है। इसमें पंचांग-निर्माण से सम्बन्धित प्राय: सभी बातें बतायी गयी हैं। इसमें समय-समय पर बीज संस्कार करने हेतु न सिर्फ निर्देश मिलता है बल्कि इससे सम्बन्धित नियम भी बताए गए हैं।

३.७ गणेश दैवज्ञ

गणेश दैवज्ञ ज्योतिष-शास्त्र के पारम्परिक विद्वान् थे। विद्वान् ज्योतिषियों के रूप में उनके कुल की बड़ी ही प्रतिष्ठा थी। अपने पिता केशव जो कि प्रसिद्ध केशवीय जातक पद्धति के रचनाकार थे, से ही उन्होंने ज्योतिष-विद्य का ज्ञान अर्जित किया। वे अपने पिता के समान ही ज्योतिष के सभी स्कन्धों के अच्छे विद्वान् थे। वे ग्रहों के साधन में दृक्पक्षता के बड़े हिमायती थे । इनका मुख्य ग्रंथ 'ग्रहलाघव' है जिसमें ग्रहों की गणना करने के लिए ज्या, कोटज्या आदि का उपयोग नहीं किया गया है। यह बड़े पांडित्य की बात है। सम्पूर्ण भारत में इनका यह ग्रन्थ जितना प्रचलित हुआ और इसके आधार पर जितने पंचांगों का निर्माण हुआ उतना और किसी भी ज्योतिषी के ग्रंथ का नहीं हुआ।
आइए, गणेश दैवज्ञ की कुछ चर्चा की जाए।

३.७.१ गणेश दैवज्ञ का काल -

ग्रहलाघव में क्षेपक १४४२ शक के लिए गए हैं इससे ग्रन्थारम्भ-काल कम से कम १४४२ शक माना जा सकता है इस ग्रन्थ के कम से कम १६-२० वर्ष पहले गणेश का जन्म माना जाए तो इनका जन्म काल १४२५ शक के आस-पास माना जा सकता है क्यूंकि अपनी टीका में केदारदत्त जोशी इन्हें १३ वर्ष की अल्पायु में ही ग्रह-लाघव का रचयिता माना है।

३.७.२ गणेश दैवज्ञ का परिचय –

जैसा कि पूर्व में मैंने कहा कि गणेश का सम्पूर्ण वंश ही प्रसिद्ध ज्योतिषियों का वंश रहा है जिनके ज्योतिषीय गुण स्वत: ही गणेश को मिले। यही कारण है की गणेश बचपन से ही अत्यन्त मेधावी और प्रतिभाशाली रहे, जिसका प्रमाण है उनका ग्रह-लाघव जैसा प्रौढ किन्तु सरल ग्रन्थ। जनश्रुति यह है कि इनके पिता केशव, जो कि स्वयं प्रकाण्ड ज्योतिषी थे, को एक दिन स्वयं स्वप्न में भगवान गणेश ने आशीर्वाद दिया जिसके बाद इन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई और उसका नाम इन्होंने गणेश रखा। अपने पिता केशव से गणेश ने ज्योतिष की शिक्षा ग्रहण। अपने पिता के ग्रन्थ मुहूर्त्ततत्व की टीका में गणेश पिता का परिचय देते हुए लिखते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि वे कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण थे और गणेश की माता का नाम लक्ष्मी था। महाराष्ट्र में आधुनिक नंदगांव के पास उनका निवास स्थान था।

३.७.३ गणेश दैवज्ञ का कर्तृत्व

ग्रहलाघव के टीकाकार विश्वनाथ ने अपनी टीका में गणेश के भतीजे नृसिंह दैवज्ञ के दो श्लोकों को उद्धृत किया है जिनमें नृसिंह ने अपने चाचा गणेश दैवज्ञ के कर्तृत्व को परिगणित किया है –

कृत्वादौ ग्रहलाघवं लघुबृहत्तिथ्यादिचिन्तामणी,
सत्सिद्धान्तशिरोमणौ च विवृतिं लीलावतीव्याकृतिम्।
श्रीवृन्दावनटीकिकां च विवृतिं मौहूर्त्ततत्वस्य वै,
सत्श्राद्धादिविनिर्णयं सुविवृतिं छन्दोर्णवाख्यस्य वै।।
सुधीरञ्जनं तर्जनीयन्त्रकञ्च सुकृष्णाष्टमीनिर्णयं होलिकायाः।
लघूपायपातस्तथान्याः................ ।।

अर्थात् ग्रहलाघव, लघुतिथिचिन्तामणि, बृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धान्तशिरोमणि की विवृति टीका, लीलावती की टीका, अपने पिता केशव के ग्रन्थ विवाहवृन्दावन और मुहूर्ततत्त्व की टीका, श्राद्धविनिर्णय, छन्दोर्णवटीका, तर्जनीयन्त्र, कृष्णाष्टमीनिर्णय, होलिकानिर्णय, लघुपायपात (पातसारिणी) इत्यादि ग्रंथों की रचना की।

३.७.३.१ ग्रहलाघव

ग्रहलाघव को गणेश का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है चूंकि इसमें एक अभीष्ट शक से ग्रह-साधन किया गया है अत: यह एक करण ग्रन्थ है इसमें क्षेपक शक १४४२ के आरम्भ या यूं कहें कि १४४१ फाल्गुन अमान्त के हैं। इसके अतिरिक्त गणित की सुगमता के लिए गणेश ने प्रत्येक ११ वर्षों में सूर्यादि सभी ग्रह कितनी गति चलते हैं इसकी गणना करके प्रत्येक ग्रह के ११ वर्षात्मक राश्यादि की 'ध्रुवक' संज्ञा की है। गणेश ने इस ग्रन्थ में ग्रह-साधन में तत्कालीन सिद्धान्तों से साधित ग्रह दृक्तुल्यता के कितने निकट हैं और उनमें कितना संस्कार करने से वे दृगुपलब्ध होते हैं इसका भी उल्लेख किया है।

सौरोर्कोऽपि विधूच्चमङ्ककलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो
ऽसृग्राहू च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्यः सेषुभागः शनिः।
शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यताम्,

(ग्रहलाघव, मध्यमाधिकार)

अर्थात् वर्तमान सूर्यसिद्धान्तानुसार सूर्य और चन्द्रोच्च (विधूच्चम्) दृक्तुल्य मिलते हैं। सूर्यसिद्धान्त से साधित चन्द्रमा (अब्ज) में से ९ कला घटाने पर (अङ्ककलिकोनः) वह भी दृक्सिद्ध

होता है। आर्यपक्षीय ग्रन्थ करणप्रकाश द्वारा लाए हुए गुरु, मङ्गल (असृग्) और राहु दृक्सिद्ध होता हैं। आर्यपक्षीय मत से ही साधित शनि में ५ अंश जोड़ने पर वह भी दृक्सिद्ध होता है। ब्राह्मपक्षीय (कजं) ग्रन्थ करणकुतूहल से लाया हुआ बुधकेन्द्र (ज्ञकेन्द्रकम्) दृक्तुल्य होता है। आर्य और ब्राह्म-पक्षीय मत से लाए हुए शुक्र-केन्द्रों को आपस में जोड़कर आधा करने से वह दृक्सिद्ध होता है।

इस ग्रंथ में मध्यमाधिकार, रविचन्द्रस्पष्टाधिकार, पंचतारास्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, मासगणाधिकार, ग्रहणद्वयसाधनाधिकार, उदयास्ताधिकार, छायाधिकार, नक्षत्रछायाधिकार, शृंगोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्याधिकार, महापाताधिकार, पञ्चांगचंद्रग्रहणाधिकार, उपसंहाराधिकार इस नाम से १६ अध्याय हैं। ग्रहलाघव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ज्या-चाप की गणित के बिना ही ग्रहों के साधन बताए गए हैं। इसके बावजूद इसकी गणित बहुत सारे सिद्धान्त ग्रंथों की अपेक्षा बहुत शुद्ध है।

शक १५०८ में गंगाधर ने, शक १५२४ में मल्लारि ने और लगभग शक १५३४ में विश्वनाथ ने, इसकी टीकाएँ लिखी थी। सुधाकर द्विवेदी ने इस पर उपपत्ति के साथ एक सुन्दर टीका लिखी है, जिसमें मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाओं का भी समावेश है। इस ग्रंथ का प्रचार महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, ग्वालियर आदि प्रान्तों में अब भी है।

बोध प्रश्न

प्र.५ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) मकरन्द सारिणी का निर्माण दिल्ली में हुआ था। ()

(ख) 'मकरन्द-विवरण' विश्वनाथ की टीका है। ()

(ग) गणेश दैवज्ञ के पिता का नाम केशव था। ()

(घ) बृहत्तिथिचिन्तामणि के रचयिता गणेश हैं। ()

(ङ) गणेश के अनुसार शनि आर्यपक्षीय मत से दृक्-आसन्न होता था। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.५ गोलाध्याय् के विषयों को संक्षेप में लिखें।

बोध प्रश्न

प्र.६ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(क) मकरन्द सारिणी का समय___________ शक है।

(ख) मकरन्द-सारिणी पर रघुनाथ की _____________टीका है।

(ग) ग्रहलाघव में क्षेपक_________ शक के हैं।

(घ) ग्रहलाघव में ध्रुवक ________वर्षों का है।

(ङ) मल्लारि की ग्रहलाघव पर टीकाकाल ________ शक का है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.६ ग्रहलाघव के वैशिष्ट्य को लिखिए।

____

____

____

____

३.८ सारांश

ग्रहों की गति, स्थिति, ग्रहण-काल आदि की गणना ज्योतिष के जिस स्कन्ध में की जाए वह 'सिद्धान्त' कहलाता है। इस सिद्धान्त के ही तीन अवान्तर भेद हैं – १. सिद्धान्त, २. तन्त्र, ३. करण। जिस भेद में कल्प से लेकर अभीष्ट समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि ज्ञान किया जाए वह 'सिद्धान्त' इस नाम से प्रसिद्ध है। जिस भेद में अभीष्ट युग से लेकर वर्तमान समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि ज्ञान किया जाए वह 'तन्त्र' इस नाम से प्रसिद्ध है। जिस भेद में अभीष्ट शक से लेकर वर्त्तमान समय तक के दिनों की गणना के आधार पर ग्रह का स्पष्ट राश्यादि ज्ञान किया जाए वह 'करण' इस नाम से प्रसिद्ध है। १००० शक से लेकर १६०० शक तक का लगभग ६०० वर्षों का कालखण्ड सिद्धान्त का उन्नतिकाल है। इस काल के विद्वानों में भोजराज, शतानंद, महेश्वर, भास्कराचार्य, महादेव, पद्मनाभ, गंगाधर, मकरन्दाचार्य, केशव, गणेश, ज्ञानराज, अनन्त, रघुनाथ, कृपाराम, दिनकर, रामभट्ट, श्रीनाथ, विष्णु, मल्लारि, विश्वनाथ, रंगनाथ मुनीश्वर, कमलाकर और नित्यानन्द प्रमुख हैं।

भास्कराचार्य का जन्म-काल १०३६ शक (१११४ ई.) है। इनके पिता का नाम महेश्वर था

जिनसे इन्होंने ज्योतिष की शिक्षा प्राप्त की, चूंकि वह स्वयं एक विद्वान् ज्योतिषी थे। इनके बनाये चार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं : १- सिद्धान्त-शिरोमणि, दो भागों में, जिनके नाम 'गणिताध्याय' और 'गोलाध्याय' हैं, २ - लीलावती, ३- बीजगणित और ४- करण-कुतूहल। सिद्धान्तशिरोमणि पर इन्होंने स्वयं 'वासना भाष्य' नामक टीका भी लिखी है।

मकरंद ने शक १४०० (१४७८ ई.) में सूर्य सिद्धांत के अनुसार पंचांग बनाने हेतु अपने ही नाम की एक सारिणी का निर्माण काशी में किया था। इस सारिणी को ही आधार बनाकर काशी और मिथिला आदि प्रांतों में पूर्व में पंचांग बनाए जाते थे और वर्त्तमान में भी बनाये जा रहे हैं।

गणेश दैवज्ञ का जन्म काल १४२५ शक के आस-पास का है। गणेश ने अपने पिता केशव से ज्योतिष की शिक्षा ग्रहण की। ग्रहलाघव, लघुतिथिचिन्तामणि, बृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धान्तशिरोमणि की विवृति टीका, लीलावती की टीका, विवाहवृन्दावन और मुहूर्ततत्त्व की टीका, श्राद्धविनिर्णय, छन्दोर्णवटीका, तर्जनीयन्त्र, कृष्णाष्टमी निर्णय, होलिकानिर्णय, लघुपायपात (पातसारिणी) इत्यादि ग्रंथों की रचना गणेश ने की। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ ग्रहलाघव है। इस ग्रंथ में १६ अध्याय हैं। ग्रहलाघव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ज्या-चाप की गणित के बिना ही ग्रहों के साधन बताए गए हैं।

३.९ शब्दावली

कलना - गणना।

द्युसदाम् - ग्रहों के।

चार: - संचरण।

धिष्ण्यम् - नक्षत्र।

वेत्ति - जानता है।

ज्योति:शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेषु - ज्योतिषशास्त्रीय सारपूर्ण गम्भीर प्रश्नों में।

अकिञ्चित्कर - महत्वहीन या प्रभावहीन।

भित्तौ - दीवार पर।

कंठीरव - शेर।

रसगुणपूर्णमही - १०३६।

वृथा - व्यर्थ।

भवलयस्य – राशिचक्र का।

अर्कलवा: समा: - बराबर बारह भाग।

किमु - क्यों ।

विधूच्चम् - चन्द्रोच्च।

अब्जः - चन्द्रमा।

अङ्ककलिकोनः - ९ कला घटा हुआ।

असृग् – मङ्गल।

कजम् – ब्राह्मपक्षीय।

ज्ञकेन्द्रकम् - बुधकेन्द्र।

३.१० बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.१ (क) (×) (ख) (×) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.२ (क) सिद्धान्त स्कन्ध।

(ख) सिद्धान्त स्कन्ध।

(ग) करण।

(घ) करण।

(ङ) सिद्धान्त-तत्त्व-विवेक।

प्र.३ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र.४ (क) १०३६।

(ख) चांगदेव।

(ग) बुधविलासिनी।

(घ) जैव।

(ङ) उदयान्तर।

प्र.५ (क) (×) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (√) (ङ) (√)

प्र.६ (क) १४००।

(ख) सिद्धखेटिका।

(ग) १४४२ ।

(घ) ११ ।

(ङ) १५२४ ।

३.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. झारखंडी शिवनाथ (१९९०) भारतीय ज्योतिष (मूल – शंकर बालकृष्ण दीक्षित), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।

२. प्रसाद गोरख (१९९०), भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

३. जोशी केदारदत्त (१९८१), सिद्धान्त शिरोमणि, मोतीलाल बनारसी प्रकाशन, वाराणसी।

४. जोशी केदारदत्त (१९८१), ग्रहलाघव, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, वाराणसी।

३.१२ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. शास्त्री नेमीचन्द्र (२०१४), भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

२. शास्त्री गिरिजा शंकर (२००१), आचार्य वराहमिहिर, ज्योतिष कर्मकांड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, इलाहाबाद।

३. द्विवेदी सुधाकर (१८९२), गणक तरंगिणी।

३.१३ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. सिद्धांत ज्योतिष के उन्नति-काल का विस्तार से वर्णन कीजिए।

२. भास्कराचार्य के कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।

३. भारतीय ज्योतिष के इतिहास में गणेश दैवज्ञ की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

इकाई - ४ कमलाकर भट्ट, बापूदेव शास्त्री एवं सुधाकर द्विवेदी

इकाई का निरूपण

४.१ प्रस्तावना
४.२ उद्देश्य
४.३ सिद्धान्त स्कन्ध का उन्नति-काल
४.४ कमलाकरभट्ट
४.४.१ कमलाकरभट्ट का परिचय और काल
४.४.२ कमलाकरभट्ट का कर्तृत्व
४.४.२.१ सिद्धान्ततत्त्वविवेक
४.४.३ कमलाकर का वैशिष्ट्य
४.५. बापूदेव शास्त्री
४.५.१ बापूदेव शास्त्री का परिचय
४.५.२ बापूदेव शास्त्री का कर्तृत्व
४.५.३ बापूदेव शास्त्री का वैशिष्ट्य
४.६ सुधाकर द्विवेदी
४.६.१ पण्डित सुधाकर द्विवेदी का जीवन-परिचय
४.६.२. पण्डित सुधाकर द्विवेदी का कर्तृत्व
४.७ सारांश
४.८ शब्दावली
४.९ बोध प्रश्नों के उत्तर
४.१० सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
४.११ सहायक ग्रन्थ सूची
४.१२ निबन्धात्मक प्रश्न

४.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! ज्योतिष-शास्त्र के एम.ए. (तृतीय सेमेस्टर) के तृतीय पत्र के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई में आपका स्वागत है। पिछली इकाई में हमने भारतीय ज्योतिष विशेषकर इसके सिद्धांत स्कंध के प्रगति-काल की चर्चा की। इसमें हमने लल्ल, ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर और श्रीपति के भारतीय ज्योतिष में अवदान की विस्तार से चर्चा की। पूर्व इकाई के अध्ययन से एक बात तो स्पष्ट है कि सिद्धांत-ज्योतिष में भारतीय विद्वानों की रुचि विशेष रूप से बढ़ी। इस रुचि ने भारतीय सिद्धांत ज्योतिष को अच्छी गति प्रदान की। यही कारण है कि उक्त कालखंड को सिद्धान्त ज्योतिष का प्रगति-काल कहना समीचीन होगा। वर्तमान इकाई में हम इस कालखंड के आगे की बात करेंगे। इस इकाई में भारतीय ज्योतिष के इतिहास के तीन प्रमुख विद्वानों और उनके कृत्यों की चर्चा करेंगे जिन्होंने अपनी अतुल्य मेधा और प्रतिभा से भारतीय ज्योतिष को समृद्ध बनाया। काल-क्रमानुसार ये क्रमश: कमलाकर भट्ट, बापूदेव शास्त्री और सुधाकर द्विवेदी हैं। ये तीनों ही प्रकांड गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। कमलाकर चूंकि इनमें अधिक प्राचीन थे अत: इनकी लेखनी और विषयोपस्थापन में प्राच्यपद्धति की झलक मिलती है। किन्तु इन्होंने भी अपनी प्रतिभा का पूर्ण सदुपयोग न करके उसका दुरुपयोग भास्कराचार्य के खण्डन में अधिक किया। इसकी बजाए यदि यह अपना ध्यान वेध पर अधिक केन्द्रित करते तो निश्चयेन कुछ अभूतपूर्व मणि ज्योतिष-रूपी समुद्र से निकाल पाते। बापूदेव शास्त्री और सुधाकर द्विवेदी चूंकि आधुनिक-गणितज्ञ थे अत: इन दोनों ने आंग्ल भाषा के ज्ञान के साथ-साथ पाश्चात्य-सिद्धान्त-ज्योतिष के मतों की भी व्याख्या और भारतीय-ज्योतिष में इनके समन्वयन का कार्य किया। आइए इन महाविभूतियों की विस्तार से चर्चा इस इकाई में करते हैं।

४.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- सिद्धान्त ज्योतिष के उन्नति-काल का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे।
- ज्योतिष में कमलाकर के योगदान को विस्तारपूर्वक निरूपित कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- बापूदेव शास्त्री और उनके कर्तृत्व का प्रतिपादन कर सकने में कुशल हो सकेंगे।
- सुधाकर द्विवेदी के व्यक्तित्व का वर्णन करने में निपुण हो सकेंगे।
- सुधाकर द्विवेदी के कर्तृत्व और भारतीय ज्योतिष में उनके महत्व को व्याख्यायित करने में निपुण हो सकेंगे।

४.३ सिद्धान्त स्कन्ध का उन्नति-काल –

मित्रों! जैसा कि पूर्व में मैंने कहा कि श्रीपति तक भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष अपनी गति पकड़ चुका था यहाँ से तो अब विकास ही इसकी नियति थी और जिसकी परिणति चरमोत्कर्ष थी। वटेश्वर और श्रीपति के समय से ही भारतीय ज्योतिषियों ने सौर सिद्धांत, आर्य सिद्धान्त या ब्राह्म सिद्धान्त के आधार पर अपने-अपने करण-ग्रन्थ बनाना आरम्भ कर दिया था जो क्रम श्रीपति के बाद बहुत तेज़ी से बढ़ा। इनमें प्राय: ९६४ शक में राजा **भोज** द्वारा रचित ब्राह्मसिद्धान्त पर आधारित करण-ग्रन्थ **राजमृगाङ्क**, प्राय: ९८० शक में वल्लभवंशीय राजा **दशबल** द्वारा ब्रह्मसिद्धान्त पर आधारित करण-ग्रन्थ **करणकमलमार्तण्ड**, १०१४ शक में ब्राह्मसिद्धान्त पर आधारित **करणप्रकाश**, १०२१ शक में प्राय: सौरसिद्धान्त पर आधारित **शतानन्द** विरचित **भास्वती**, ११०५ शक में ब्राह्मसिद्धान्त पर आधारित **भास्कराचार्य** द्वारा रचित **करणकुतूहल**, १२८९ शक में आर्य और ब्राह्म सिद्धान्त के आधार पर **महादेव** द्वारा विरचित करण-ग्रन्थ **कामधेनु**, शक १४०० में सौर सिद्धान्त पर आधारित **मकरन्द** विरचित **मकरन्द-सारिणी**, शक १४१८ में **केशव** द्वारा निर्मित **ग्रहकौतुक**, शक १४४२ में **गणेश** द्वारा विरचित **ग्रहलाघव**, शक १४४७ में **अनन्त** कृत **अनन्तसुधारस**, शक १५०० के लगभग **दिनकर** द्वारा रचित ब्राह्मसिद्धान्त पर आधारित दो करण-ग्रन्थ क्रमश: **खेटकसिद्धि** और **चन्द्रार्की**, शक १५१२ में **रामभट** का सूर्य सिद्धान्त पर आधारित करण **रामविनोद**, १५४१ शक में **नागेश** की **ग्रहप्रबोध** १५७५ शक में **कृष्ण** कृत ग्रहलाघवाधारित **करणकौस्तुभ**, १६२६ शक में **जटाधर** द्वारा निर्मित **फत्तेशाहप्रकाश**, १६८८ शक में शंकर कृत **वैष्णवकरण**, १६८९ शक में **मणिराम** कृत **ग्रहगणितचिन्तामणि** इत्यादि प्रसिद्ध हैं। ये सभी करण-ग्रन्थ हैं, जिनका मैंने नामोल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त सिद्धान्त-ग्रंथों की भी रचना हुई जिनमें १४२५ शक में **ज्ञानराज** द्वारा प्रणीत **सिद्धान्तसुन्दर**, १५६१ शक में **नित्यानंद** द्वारा रचित **सिद्धान्तराज**, प्राय: १५६८ शक में **मुनीश्वर** कृत **सिद्धान्तसार्वभौम**, शक १५८० में **कमलाकर** कृत **सिद्धान्ततत्त्वविवेक** आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध करण-ग्रन्थों और सिद्धान्त-ग्रन्थों के कुछ प्रसिद्ध टीकाकार भी हुए जिनमें **मल्लारि**, **विश्वनाथ** और **नृसिंह** जैसे प्रसिद्ध टीकाकार अग्रगण्य हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि मैं कमलाकर तक के कालखण्ड की ही चर्चा यहाँ कर रहा हूँ। इस प्रकार देखा जाए तो यह काल-खण्ड निश्चय ही भारतीय ज्योतिष का विशेषकर सिद्धान्त-ज्योतिष का अत्युन्नत काल कहा जाना चाहिए। इस कालखंड के बाद से भारतीय ज्योतिष में प्राय: २०० वर्षों तक का ठहराव सा दिखता है। शायद तत्कालीन शासकों और उस समय भारत पर शासन कर रहे मुगल शासकों की प्राथमिकता बदल गयी रही

होगी। क्यूंकि राज्याश्रय के बिना जीविकोपार्जन कठिन होता है ऐसी स्थित में तारों और नक्षत्रों का सतत वेध जो कि शोध को दिशा और गति दोनों प्रदान करता है वह गृहस्थी चलाने के लिए अपर्याप्त होता है। ऐसे में गणितज्ञों का फलित-ज्योतिष की ओर झुकाव सहज ही है। इसका प्रत्यक्ष तो हम आज-कल समाज में ही कर सकते हैं जहाँ जीविकोपार्जन के एक मात्र उद्देश्य से ज्योतिष की उपाधियाँ और प्रमाण-पत्र लेकर 'वाचमर्थोऽनुधावति' का दावा करने वाले ज्योतिषी प्रत्येक चौराहे पर मिल जाएंगे। ख़ैर...... कारण जो भी हो भारतीय-ज्योतिष की गति इसके बाद से मंथर पडी और इक्के-दुक्के प्रयास ही किये गए जहां राजा स्वयं ज्योतिषी हो जैसे जयपुर नरेश जयसिंह या फिर राज्याश्रित ज्योतिषी हो जैसे व्यंकटेश बापू केतकर या सामन्त चन्द्रशेखर। कालांतर में आंग्लों का प्रभाव भी भारतीय-ज्योतिष पर पड़ा और यद्यपि वेध की परम्परा कुछ आगे बढ़ी किन्तु भारतीय-सिद्धान्त-ज्योतिष, पाश्चात्य-सिद्धांतों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। फिर चाहे सुधाकर द्विवेदी हों या बालगंगाधर तिलक या शंकर बालकृष्ण दीक्षित वेदांग-ज्योतिष के सूत्रात्मक श्लोकों की व्याख्या और भारतीय-ज्योतिष की नाक्षत्रीय-परम्परा दोनों ही अपने मूल-स्वरुप से भटके। फिर भी परवर्ती विद्वान् भारतीय ज्योतिषवेत्ताओं और गणितज्ञों के योगदान को कम करके नहीं आंका जा सकता है। फलत: इस इकाई में हम कमलाकर और उनके परवर्ती विद्वानों जिनमें बापूदेव शास्त्री और महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी का नाम प्रमुख है की चर्चा इस आगे इस पाठ में करेंगे।

४.४ कमलाकरभट्ट -

उपरिलिखित पाठ्यांश में कमलाकर का नाम सबसे पहले है चूंकि काल-क्रम में ये अन्य तीनों से पूर्व में आते हैं। अत: आइए, सर्वप्रथम चर्चा इन्हीं की करते हैं।

४.४.१ कमलाकर का परिचय और काल –

कमलाकर का वंश प्रसिद्ध विद्वानों और ज्योतिषियों का वंश था। ये तैत्तिरीयशाखाध्यायी भारद्वाज-गोत्रीय महाराष्ट्रियन ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। यह वंश विदर्भ देश में पाथरी (पार्थ पुर) नामक ग्राम में इनके पूर्वज ज्योतिषी राम रहते थे। कमलाकर की जो वंशावली मिलती है उस वंशवृक्ष में मूल में राम ज्योतिषी थे, जिनके पुत्र भट्टाचार्य अच्छे नैयायिक थे उनके पुत्र दिवाकर अपने पितामह के सामान अच्छे प्रतिष्ठित ज्योतिषी थे। ये दिवाकर ही कमलाकर के प्रपितामह थे। दिवाकर के पांच पुत्र १. कृष्ण, २. विष्णु, ३. मल्लारि, ४. केशव और विश्वनाथ थे। ये सभी ज्योतिष-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित और ज्योतिष-मर्मज्ञ थे। ग्रह-लाघव पर मल्लारि-कृत और ताजिक नीलकंठी पर विश्वनाथ-कृत टीकाएं तो ज्योतिष-जगत में अत्यन्त ही समादरणीय हैं। कालान्तर में पूर्वोक्त पाथरी ग्राम से ढाई योजन पश्चिम में गोदावरी नदी के उत्तर-तट पर गोला नामक ग्राम में

कमलाकर के पितामह कृष्ण आकर बस गए थे। इन्होंने एक सौर पक्षीय करण-ग्रन्थ बनाया था। कृष्ण के पुत्र और कमलाकर के पिता नृसिंह का जन्म शक १५०८ में हुआ। नृसिंह के ४ पुत्रों में कमलाकर दूसरे थे। इनके बड़े भाई दिवाकर का जन्म शक १५२८ में तथा इनका जन्म शक १५३० में हुआ। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इनके पूर्वजों का जो वंशवृक्ष बनाया है वह इस प्रकार है –

राम (तैत्तिरीय शाखाध्यायी भारद्वाजगोत्रीय महाराष्ट्रियन ब्राह्मण)
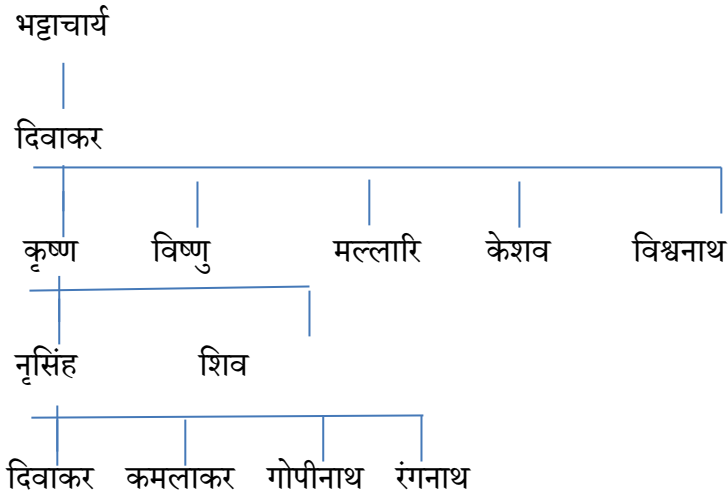
कमलाकर ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्ततत्त्वविवेक में अपने वंश का विस्तार से वर्णन किया है। जो इस प्रकार है -

अथात्र सार्धाम्बरदस्र (२०/३०) संख्यपलांशकैरस्ति च दक्षिणस्याम्।
गोदावरीसौम्यविभागसंस्थं दुर्गञ्च यद्देवगिरीतिनाम्ना ।।
प्रसिद्धमस्मान्नृप १६ योजनैः प्राक् याम्यान्तराशास्थितपाथरी च।
विदर्भदेशान्तरगास्ति रम्या राज्ञां पुरी तद्गतदेशमध्ये।।
तस्यास्तु किञ्चिद् परभाग एव सार्धद्वितुल्यैः २-१/२ किल योजनैश्च ।
गोदावरीवर्ति सदैव गङ्गा या गौतमप्रार्थनया प्रसिद्धा।।
अस्याः सतां सौम्यतटोपकण्ठे ग्रामोस्ति गोलाभिधया प्रसिद्धः।

(सिद्धान्ततत्त्वविवेक)

अर्थात् दक्षिण-भारत में २०/३० दक्षिण अक्षांश पर गोदावरी नदी के उत्तर भाग पर दुर्ग नामक नगर है जो कि 'देवगिरि' इस नाम से प्रसिद्ध है। इससे १६ योजना पूर्व में उत्तर-दक्षिण दिशा में 'पाथरी' नामक स्थल है जो की विदर्भ राज्य के अंतर्गत आता है। इस पाथरी से ढाई योजन पश्चिम में गोदावरी का तटवर्ती स्थल है जो गौतम ऋषि की तपस्थली के रूप में प्रसिद्ध है। गोदावरी के इस उत्तरी तट पर सज्जनों का एक 'गोला' नामक प्रसिद्ध ग्राम है।

विप्रो महाराष्ट्र इति प्रसिद्धो रामो भारद्वाजकुलावतंसः ।।
बभूव तज्जोऽखिलमान्यभट्टाचार्योऽतिशास्त्रे निपुणः पवित्रः ।
सदा मुदा सेवितभर्गसूनुर्दिवाकरास्तत्तनयो बभूव ।
अस्यार्यवर्यस्य दिवाकरस्य श्रीकृष्णदैवज्ञ इति प्रसिद्धः।।
तज्जस्तु सद्गोलविदां वरिष्ठो नृसिंहनामा गणकार्यवन्द्यः।
तज्जस्तु तस्यैव कृपालवेन स्वज्येष्ठसद्बन्धुदिवाकराख्यात्।
सांवत्सरार्यात् गुरुतः प्रलब्धशास्त्रावबोधो गणकार्यतुष्ट्यै।।
दृग्गोलजक्षेत्रनवीनयुक्त्या पूर्वोक्तितः श्रीकमलाकराख्यः ।
समस्तसिद्धान्तसुगोलतत्त्वविवेकसंज्ञं किल सौरतत्त्वम्।।

अर्थात् भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न **(भारद्वाजकुलावतंसः)** महाराष्ट्रियन ब्राहमण राम उत्पन्न हुए। उनका पुत्र **(तज्जः)** भट्टाचार्य मीमांसाशास्त्र में अत्यन्त निपुण था। उनके पुत्र वरिष्ठ आचार्य दिवाकर के श्रीकृष्ण नामक प्रसिद्ध दैवज्ञ थे। और उनके पुत्र **(तज्जः)** गोलविदों में वरिष्ठ, ज्योतिषियों में पूज्य **(गणकार्यवन्द्यः)** नृसिंह नामक दैवज्ञ हैं। उनके (नृसिंहदैवज्ञ के) पुत्र और उनकी (नृसिंहदैवज्ञ की) कृपा के अंश से अपने बड़े भाई दिवाकर जो कि बड़े ज्योतिषी **(साम्वत्सरार्य)** और गुरु थे उनसे मैं श्री कमलाकर ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके **(प्रलब्धशास्त्रावबोधो)** बड़े ज्योतिषियों की सन्तुष्टि के लिए वेध और गोल से उत्पन्न नवीन युक्ति के द्वारा सिद्धान्त और गोल के समस्त विषयों को सूर्य-सिद्धान्त के मतानुसार तत्वविवेक नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

४.४.२. कमलाकर का कर्तृत्व –

कमलाकर ने शक १५८० **(खनागपञ्चेन्दु)** में सिद्धान्ततत्त्वविवेक ग्रन्थ का निर्माण गंगा के तट पर काशी में किया। इस ग्रन्थ में गोल और सिद्धान्त दोनों के विषयों का निरूपण किया है। जैसा कि कहा है –

समस्तसिद्धान्तसुगोलतत्त्वविवेकसंज्ञं किल सौरतत्त्वम्।।

खनागपञ्चेन्दुशकेष्वतीते सिद्धान्तमार्याभिमतं समग्रम्।
भागीरथीसौम्यतटोपकण्ठवाराणसीस्थो रचयाम्बभूव।।

४.४.२.१ सिद्धान्ततत्त्वविवेक –

कमलाकर ने सिद्धान्ततत्त्वविवेक का निर्माण सूर्यसिद्धान्त के आधार पर किया जिसका उन्हें इतना अत्यधिक अभिमान था कि उनके अनुसार जो बातें सूर्यसिद्धान्त में नहीं है वे सब बातें झूठी हैं, यहाँ तक कि सूर्य-सिद्धान्त की गणना से यदि वेध-सिद्ध गणना में अंतर दिखाई पड़े तो भी उसमें बीज-संस्कार करके गणना न करनी चाहिए। यद्यपि इस ग्रन्थ में बहुत से नए विचारों का समावेश किया गया है। कमलाकर ने ग्रहों के भगणादि मान सूर्यसिद्धान्त से लिए हैं। इस ग्रन्थ में कुल १३ अधिकार – १. मध्यमाधिकार, २. स्पष्टाधिकार, ३. त्रिप्रश्नाधिकार, ४. बिम्बाधिकार, ५. छायाधिकार, ६. श्रृंगोन्नत्यधिकार, ७. उदयास्ताधिकार, ८. पर्वसम्भवाधिकार, ९. चंद्रग्रहणाधिकार, १०. सूर्यग्रहणाधिकार, ११. भग्रहयुत्यधिकार, १२. पाताधिकार और १३. महाप्रश्नाधिकार हैं। इन १३ अधिकारों में भिन्न-भिन्न छन्दों में ३०२४ पद्य हैं। यह ग्रन्थ गद्य-पद्यात्मक है। पूर्वोक्त अधिकारों के अतिरिक्त ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के अंत में 'शेषवासना' नामक उपपत्तिविषयक प्रकरण भी दिया है।

ग्रन्थ में तुरीय-यन्त्र से सविस्तार वेध करने की प्रक्रिया वर्णित की गयी है। ग्रन्थ में त्रिप्रश्नाधिकार और ग्रहणाधिकार में नवीन विचारों का समावेश किया गया है। ग्रहणाधिकार में कमलाकर कहते हैं कि सूर्यग्रहण के समय चन्द्रपृष्ठ-निवासियों को पृथ्वी-ग्रहण दिखाई देता है। उनके अनुसार शुक्रकृत सूर्यबिम्ब-भेद मेघ, ओला, भूकम्प और उल्कापात का कारण है। ग्रन्थ में अंकगणित, रेखागणित, क्षेत्रविचार और ज्यासाधन-सम्बन्धी बहुत से नवीन प्रकारों का वर्णन किया गया है।

४.४.३ कमलाकर का वैशिष्ट्य –

सम्पात में गति होने के कारण ध्रुव नक्षत्र अस्थिर है और सम्प्रति जो ध्रुव-तारा दिखाई देता है वह ठीक ध्रुव-स्थान में नहीं है। कमलाकर के अनुसार पूर्वरात्रि और उत्तररात्रि के उसके स्थान भिन्न-भिन्न होते हैं। किसी भी याम्योत्तर वृत्त से पूर्वापर अंशात्मक अंतर को सम्प्रति रेखांश कहते हैं। कमलाकर इन्हें तूलांश कहते हैं। कमलाकर ने विषुवत् वृत्त पर स्थित 'खालदात्त' नामक नगर को मुख्य याम्योत्तर-वृत्त में मानकर २० नगरों के अक्षांश और रेखांश दिए हैं। किन्तु खालदात्त नामक नगर जिसका ज़िक्र कमलाकर करते हैं का कमलाकर-प्रोक्त रीति से जो देशांतर आता है उसके अनुसार इसे वर्त्तमान ग्रीनविच से ३४°/५२" देशांतर पर होना चाहिए लेकिन नक़्शे में उक्त रेखांश के तुल्य इस नाम का कोई स्थान नहीं दिखाई पड़ता है। हां... ३४°/५०" देशांतर पर काबेडेल्लो नामक

नगर है जिसको कमलाकर खालदात्त कहते हैं। किन्तु इसमें काशी का ही अक्षांश (जहां कमलाकर ने इस ग्रन्थ की रचना की) प्राय: डेढ़ अंश अशुद्ध आता है। इनके तूलांशों में भी प्राय: २ अंश तक की अशुद्धता है। अन्य सिद्धान्तों में ३४३८ त्रिज्या मानकर ज्या-सारिणी बनाई गयी है, परन्तु कमलाकर के ग्रन्थ में त्रिज्या ६० मान कर प्रत्येक अंश की ज्या दी गयी है जो गणना के लिए बड़ी सुगम है। ग्रह के भोगांश से विषुवांश निकालने की सारिणी भी है अन्य सिद्धान्तों में ३४३८ त्रिज्या मानकर ज्या-सारिणी बनाई गयी है, परन्तु कमलाकर के ग्रन्थ में त्रिज्या ६० मान कर प्रत्येक अंश की ज्या दी गयी है जो गणना के लिए बड़ी सुगम है।

इसके साथ उनका भास्कराचार्य के प्रति कुछ दुराग्रह भी है। उदाहरण के तौर पर भास्कर ने उदयान्तर संस्कार का मौलिक रूप से प्रतिपादन किया जो कि ग्रह-साधन की शुद्ध रीति का एक उपक्रम है किन्तु इसका वर्णन सूर्यसिद्धांत में नहीं होने के कारण कमलाकर ने इसका अनावश्यक विरोध किया। भूपरिध्यादि के भास्करोक्त सूक्ष्म-साधन-प्रकार का भी कमलाकर ने दुराग्रहपूर्ण खंडन करने का प्रयास किया है। इन्होंने मुनीश्वर के भी कुछ मतों का अनावश्यक खण्डन किया है।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(त) राजमृगाङ्क ब्राह्मसिद्धान्त पर आधारित करण-ग्रन्थ है। ()

(थ) राजा कमल द्वारा रचित करण-ग्रन्थ करणकमलमार्तण्ड। ()

(द) करणकुतूहल की रचना ११०५ शक में हुई। ()

(ध) मकरन्द-सारिणी सौर सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। ()

(न) केशव द्वारा निर्मित करण-ग्रन्थ ग्रहकौतुक है। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ कमलाकर भट्ट का वंश-परिचय दीजिए।

____

____

____

____

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(त) करणप्रकाश ___________ पर आधारित है।

(थ) शतानन्द विरचित _____________ करण-ग्रन्थ है।

(द) भास्कराचार्य द्वारा रचित करण-ग्रन्थ________ है।

(ध) ________ द्वारा विरचित करण-ग्रन्थ कामधेनु है।

(न) ग्रहलाघव ________ की रचना है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ श्रीपति के बाद के करण-ग्रंथों के नाम और कर्ता बताइए।

____

____

____

____

४.५ नृसिंह (बापूदेव) शास्त्री –

नृसिंह शास्त्री, जिनका उपनाम बापूदेव था, क्वीन्स कालेज (वर्तमान सम्पूर्ण संस्कृत विश्वविद्यालय), वाराणसी में गणित और ज्योतिष के प्राध्यापक पद पर नियुक्त थे। ये अत्यन्त अत्यन्त मेधावी और प्रतिभा-सम्पन्न थे। ये भारतीय और पाश्चात्य ज्योतिष और गणित के प्रकाण्ड पण्डित थे। भारतीय गणितज्ञों के द्वारा पाश्चात्य गणित के अध्ययन की परम्परा में ये अग्रगण्य रहे। आइए, इनके जीवनी और कर्तृत्व पर दृष्टिपात किया जाए।

४.५.१ बापूदेव शास्त्री का परिचय –

बापूदेव शास्त्री का जन्म महाराष्ट्र प्रांत के अहमदनगर जिले के गोदा नदी के किनारे टोके नामक गांव में शक १७४३ (१ नवम्बर १८२१ ई.) में कार्तिक शुक्ल षष्ठी तिथि को ऋग्वेदी चित्पावन ब्राह्मण सीताराम जी के घर हुआ। इन्होंने नागपुर में मराठी पाठशाला में ढुण्ढिराज मिश्र जी से बीजगणित, लीलावती और सिद्धान्तशिरोमणि का अध्ययन किया। बापूदेव शास्त्री की गणितीय प्रतिभा देखकर शक १७६० में सीहोर के एजेंट एल. विलकिंसन बापूदेव उन्हें सीहोर लेकर आए और वहां की संस्कृत पाठशाला में श्री सेवाराम जी से रेखागणित इत्यादि की शिक्षा दिलाई। अध्ययन के पश्चात् यह काशी में संस्कृत कालेज में गणित विषय के प्रधान अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। शक १७८६ (१८६४ ई.) में बापूदेव शास्त्री जी ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड की रायल

एशियाटिक सोसायटी के और शक १७९० (१८६८ ई.) में बंगाल एशियाटिक सोसायटी के सम्मानित सदस्य बने। शक १७९१ (१८६९ ई.) में कलकत्ता विश्वविद्यालय और बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भी समितियों में सदस्य रहे। शक १८०९ (१८८७ ई.) में महारानी विक्टोरिया के शतार्धोत्सव के अवसर पर तत्कालीन अंग्रेज़ी शासन ने बापूदेव शास्त्री जी को महामहोपाध्याय की पदवी से सम्मानित किया। जम्मू प्रांत के नरेश ने एक बार शास्त्री जी को शुद्ध चन्द्र-ग्रहण की गणना के लिए एक सहस्र रूपए पुरस्कार-स्वरूप दिए थे।

४.५.२ बापूदेव शास्त्री का कर्तृत्व –

जैसा कि मैंने कहा आप सिद्धांत ज्योतिष के पंडित थे इन्होंने ज्योतिष के इसी स्कन्ध पर अपनी लेखनी भी चलाई। इनमें कुछ तो विशुद्ध गणित के ग्रन्थ हैं तथा कुछ सिद्धान्त के हैं। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी तीनों ही भाषाओं में ग्रन्थ रचे हैं, जिनमें कुछ प्रकाशित हो पाए तो कुछ अप्रकाशित ही रह गए। इनके द्वारा संस्कृत भाषा में रचित प्रकाशित कृतियां इस प्रकार हैं –

१. रेखागणित प्रथामाध्याय
२. त्रिकोणमिति
३. सायनवाद
४. प्राचीन ज्योतिशाचार्याशय-वर्णन
५. अष्टादश-विचित्र-प्रश्नसंग्रह-सोत्तर
६. तत्त्वविवेकपरीक्षा
७. मानमंदिरस्थ-यन्त्र-वर्णन

संस्कृत भाषा में रचित अप्रकाशित कृतियां इस प्रकार हैं –

८. चलन-कलन – इसमें चलन-कलन-गणितीय-विधि से सम्बंधित २० श्लोक वर्णित हैं।
९. चापीय-त्रिकोणमिति-संबंधी कुछ सूत्र
१०.सिद्धान्तग्रन्थोपयोगी टिप्पणी
११.यन्त्रराजोपयोगी छेद्यक
१२.लघुशंकुच्छिन्नक्षेत्रगुण

हिन्दी भाषा में इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ इस प्रकार हैं -

१३.अंकगणित
१४.बीजगणित
१५.फलित-विचार
१६.सायनवादानुवाद

१७.सिद्धान्त शिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय का प्रकाशन अपनी शोधपूर्वक टिप्पणी के साथ शक १७८८ (१८६६ ई.) में किया।

१८. लीलावती का संपादन शक १८०५ (१८८३ ई.) में किया।

अङ्ग्रेज़ी भाषा में भी इन्होंने २ ग्रंथों की रचनाएँ की जो मूल ग्रंथों का टिप्पणी सहित अंग्रेज़ी अनुवाद हैं।

१९.विल्किन्सन के साथ मिलकर सिद्धान्त शिरोमणि का अंग्रेज़ी अनुवाद जिसका प्रकाशन शक १७८३ (१८६१ ई.) हुआ।

२०.इनके द्वारा कृत सूर्यसिद्धान्त का अङ्ग्रेज़ी अनुवाद भी इस शक में प्रकाशित हुआ।

४.५.३ बापूदेव शास्त्री का वैशिष्ट्य –

बापूदेव शास्त्री भारतीय ज्योतिष में काला-क्रमानुसार परिवर्तन और संशोधन के बड़े हिमायती थे। वह पंचांगों के निर्माण में भी दृक्-सिद्ध ग्रह के साधन के पक्ष में थे। उनके अनुसार पंचांगों की गणना शुद्ध वेध-सिद्ध मूलांकों से करनी चाहिए। एतदर्थ उन्होंने पुरज़ोर कोशिश भी की। इस क्रम में उन्होंने न केवल ग्रन्थ ही लिखे अपितु अपने मत के समर्थन और प्रदर्शन हेतु दृक्-सिद्ध पंचांगों का नाटिकल अल्मनाक (नाविक पंचांग) के आधार पर निर्माण भी शक १७८८ में आरम्भ किया जो कि अपने जीवन के अंतिम वर्ष (शक १८१२) तक बनाते रहे।

इस-प्रकार बापूदेव शास्त्री आधुनिक-भारतीय-ज्योतिष-परम्परा के महत्त्वपूर्ण घटकभूत हैं जिनका योगदान भारतीय ज्योतिष के इतिहास में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इनके महत्त्वपूर्ण योगदान को तत्कालीन आंग्ल-प्रशासन ने भी सादर नमन करते हुए इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि देकर से सम्मानित किया।

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(च) नृसिंह शास्त्री का उपनाम बापूदेव है। ()

(छ) बापूदेव शास्त्री क्वीन्स कालेज में गणित और ज्योतिष के प्राध्यापक थे। ()

(ज) शक १७०० में बंगाल एशियाटिक सोसायटी के सम्मानित सदस्य बने। ()

(झ) रेखागणित के चतुर्थ अध्याय की रचना बापूदेव शास्त्री ने की। ()

(ञ) दृक्-सिद्ध पंचांगों का निर्माण बापूदेव शास्त्री ने किया। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ बापूदेव शास्त्री की रचनाओं के नाम लिखें।

४.६. पण्डित सुधाकर द्विवेदी –

पण्डित सुधाकर द्विवेदी आधुनिक भारतीय इतिहास के प्रमुख मनीषियों में अन्यतम हैं। इन्होंने न केवल भारतीय ज्योतिष और गणित विधा पर अपनी लेखनी चलाई अपितु नवीन पाश्चात्य गणित पर भी साधिकार दखल दिया। सुधाकर जी का कर्तृत्व भी उनके व्यक्तित्व के सामान ही अत्यन्त व्यापक है। प्राच्य-ज्योतिष-ग्रंथों पर टीका के साथ-साथ नवीन-गणितीय-ग्रंथों के अनुवाद तथा मौलिक ग्रंथों के सर्जना का कार्य भी पण्डित जी ने बड़ी ही प्रामाणिकता से किया। इनकी अद्वितीय प्रतिभा का लोहा तत्कालीन अंग्रेज-शासन ने भी माना और इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया। तो आइए मित्रों द्विवेदी जी की जीवन-यात्रा को एक सरसरी निगाह से देखने का प्रयास करें।

४.६.१ पण्डित सुधाकर द्विवेदी का जीवन-परिचय -

पण्डित सुधाकर द्विवेदी का जन्म काशी के खजूरी क्षेत्र में वेद, कर्मकाण्ड और ज्योतिष-शास्त्र के विद्वान् पण्डित कृपालुदत्त द्विवेदी के घर शक १७८२ में चैत्र शुक्ल चतुर्थी सोमवार को हुआ था सुधाकर जी के पूर्वज गोरखपुर जिले के मूल-निवासी थे। तो फिर सुधाकर जी का वाराणसी-निवास कैसे बना? वस्तुत: सुधाकर जी के पिता कृपालुदत्त जी के प्रपितामह को उनके नाना जी (मातामह) ने जो कि वाराणसी जिले में रहते थे ने स्वयं का पुत्र न होने के कारण गोद लिया था। इस प्रकार सुधाकर जी के पूर्वज गोरखपुर से काशी आकर बस गए। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सुधाकर जी का नाम भी उनके पिता ने नहीं अपितु उनके चाचा ने रखा वह भी काशी में उन-दिनों प्रचलित पत्रिका सुधाकर के नाम पर। बालक सुधाकर जब एक वर्ष के थे तभी दुर्योग से उनके माता जी का स्वर्गवास हो गया। माता के अभाव में उन्हें नाना और नानी का कुछ अधिक ही दुलार मिला जिसके कारण उनके शैक्षणिक जीवन का आरम्भ भी अन्य बालकों की अपेक्षा कुछ देर से ८ वर्ष की उम्र में हुआ। सुधाकर जी ने पण्डित देवकृष्ण मिश्र से ज्योतिष-शास्त्र की और पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री जी से व्याकरण-शास्त्र के शिक्षा ग्रहण की। अल्प-काल में ही उन्होंने इन शास्त्रों पर अधिकार कर लिया। तीक्ष्ण बुद्धि के साथ ही वे कवित्व-प्रतिभा के भी धनी थे। प्राचीन और आधुनिक गणित पर

उनका सामान अधिकार था। वे संस्कृत और आंग्ल भाषा दोनों में ही अत्यन्त दक्ष थे। किशोरावस्था में ही बीजगणित में उनकी गति से प्रभावित होकर तत्कालीन क्वींस कालेज (वर्त्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि.) के गणित और ज्योतिष विभाग के प्रमुख श्री बापूदेव शास्त्री ने उन्हें प्राचार्य ग्रिफिथ के द्वारा पुरस्कृत भी कराया। अध्ययन के उपरान्त उनकी नियुक्ति ज्योतिष-अध्यापक के रूप में दरभंगा स्थित संस्कृत विद्यालय में हुई। किन्तु ३ वर्ष के भीतर ही उनके विद्वत्ता और प्रतिभा की ख्याति से प्रभावित होकर क्वींस कालेज, वाराणसी के प्राचार्य डा. थीबो ने उन्हें सरस्वती भवन पुस्तकालय के अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। इस पद पर इन्होंने ६ वर्षों तक कार्य किया। शक १८११ में प. बापूदेव शास्त्री के सेवानिवृत्त होने पर डा. थीबो ने पंडित सुधाकर द्विवेदी को गणित और ज्योतिष के प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति किया। कालांतर में उनकी प्रतिभा और कर्तृत्व से प्रभावित होकर तत्कालीन आंग्ल-प्रशासन ने इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से भी विभूषित किया।

४.६.२. पण्डित सुधाकर द्विवेदी का कर्तृत्व –

मित्रों! जैसा कि मैंने पूर्व में ही कहा, पण्डित जी का व्यक्तित्व और कर्तृत्व दोनों ही अत्यन्त व्यापक और प्रभावशाली रहा है। गणित और ज्योतिष के प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही परम्पराओं पर आपकी समीक्षापरक सशक्त लेखनी समान रूप से चली है। आइए इनके कर्तृत्व पर एक दृष्टिपात करें।

१. दीर्घवृत्तलक्षण (शक १८००)
२. विचित्र प्रश्न (शक १८०१) – इसमें २० कठिन प्रश्न और इनके उत्तर हैं।
३. वास्तवचन्द्रश्रृंगोंन्नतिसाधन (शक १८०२) – इस ग्रन्थ में ९२ पद्य हैं जिनमें लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर और बापूदेव आदि की लिखी रीतियों में दोष के प्रकट करते हुए वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नति के साधन की विधि वर्णित है।
४. द्युचारचार (शक १८०४) – इस ग्रन्थ में गृह-कक्षा का विवेचन पाश्चात्य ज्योतिष क अनुसार किया गया है।
५. प्रतिभाबोधकम् (शक १८०४) – यह ग्रन्थ रेखागणित और ज्यामिती के विविध सिद्धांतों के आधार पर खगोलीय-क्षेत्रों का निरूपण करता है जिनका उपयोग खगोल-गणित में विशेषकर यंत्रों के द्वारा ग्रह-वेध में होता है। यद्यपि सुधाकर जी इस ग्रन्थ का प्रणयन १७९५ शक में ही किया था किन्तु इसका प्रकाशन शक १८०४ में ही हुआ।
६. पिण्डप्रभाकर (शक १८०७) – इस ग्रन्थ में वास्तु-संबंधी आधारभूत तत्त्वों की विवेचना की गयी है।

७. भाभ्रम्रेखानिरूपण – इसमें शंकु, सूची आदि विविध निर्देशांक ज्यामितीय-क्षेत्रों के आधार पर छाया के भ्रमण-मार्ग का निरूपण प्रस्तुत किया गया है।

८. धराभ्रमविचार – इसमें पृथ्वी की दैनिक गति से संबधित विषयों का विवेचन किया गया है।

९. ग्रहकरण – इसमें ग्रहण का विवेचन निरूपित है।

१०.गोलीयरेखागणित – इसमें रेखागणितीय और ज्यामितीय-गणित के सिद्धांतों के आधार पर विविध-खगोलीय-क्षेत्रों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

११.यूक्लिड नामक पाश्चात्य गणितज्ञ के रेखागणित-संबंधी ग्रन्थ के छठे, ग्यारहवें और बारहवें अध्याय का संस्कृत के पद्यों में भाषान्तर भी पण्डित द्विवेदी ने किया।

१२.गणकतरङ्गिणी (शक १८१२) – यह भारतीय ज्योतिषियों के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालने वाला भारतीय-ज्योतिष का इतिहासपरक ग्रन्थ है।

इसके अतिरिक्त सुधाकर जी ने अनेक प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों की टीकाएँ भी कीं जो इस प्रकार हैं -

१३.लीलावती की टीका (शक १८००) – भास्कराचार्य के लीलावती ग्रन्थ की उपपत्ति के साथ संस्कृत-टीका का प्रणयन किया जिसमें अनेक गणितीय विशेषताओं का प्रदर्शन अपनी प्रतिभा के आधार पर सुधाकर जी ने प्रस्तुत किया।

१४.करणकुतूहल की टीका (शक १८०३) – भास्कराचार्य के करणकुतूहल ग्रन्थ की भी 'वासनाविभूषण' नामक टीका सुधाकर द्विवेदी जी ने की।

१५.यन्त्रराज की टीका (शक १८०४) – यन्त्रराज के साथ-साथ उस पर मलयेंदुसूरि-कृत टीका पर भी भाष्य स्वयं के द्वारा कृत कुछ संशोधनों के साथ द्विवेदी जी लिखा।

१६.इसके अतिरिक्त कृष्ण-कृत छादक-निर्णय का भी संशोधन करके आपने शक १८०६ में उसे प्रकाशित किया।

१७.कमलाकर भट्ट के सिद्धान्त-तत्त्व-विवेक का संशोधन करके इसका प्रकाशन सुधाकर द्विवेदी जी ने शक १८०७ में किया।

१८.शिष्यधीवृद्धिद की टीका (शक १८०८) – जैसा कि आपको ज्ञात है 'शिष्धीवृद्धिद' लल्ल का तन्त्र-ग्रन्थ है। इसका सम्पादन भी सुधाकर द्विवेदी ने किया।

१९.बीजगणित की टीका (शक १८१०) – भास्कराचार्य के बीजगणित की भी सुधाकर जी ने उपपत्ति के साथ टीका लिखी।

२०.बृहत्संहिता का सम्पादन (शक १८१०) – उत्पल टीका सहित बृहत्संहिता का सम्पादन इन्होंने शक १८१० में करके प्रकाशित किया।

२१. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त की टीका शक १८२४ में किया।

२२. सूर्यसिद्धान्त की सुधावर्षिणी टीका शक १८२८ में पूर्ण हुई जिसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन शक १८२९ में बिब्लियोथिका इण्डिका में दो भागों में हुआ। पुन: द्वितीय संस्करण का प्रकाशन शक १८४७ में बंगाल के एशियाटिक सोसायटी द्वारा किया गया।

२३. सुधाकर जी ने सोमाकर भाष्य के साथ याजुष-ज्योतिष और आर्च-ज्योतिष (ऋक् ज्योतिष) का अपने सुधाकर भाष्य के साथ प्रकाशन शक १८३० में किया।

२४. पंचसिद्धान्तिका की टीका (शक १८८९) – पंचसिद्धान्तिका का सम्पादन करने के साथ ही साथ उस पर प्रकाश नामक स्वयं की टीका भी सुधाकर जी ने की जो क्वींस कालेज, वाराणसी के तत्कालीन प्राचार्य डा. थीबो के आंग्ल-अनुवाद के साथ प्रकाशित हुई।

२५. सिद्धान्तशिरोमणि की टीका।

२६. करणप्रकाश की टीका।

२७. ग्रह-लाघव की सोपपत्तिक टीका।

२८. त्रिशतिका की टीका।

इसके अतिरिक्त २९. चलनकलनम्, ३०. चलराशिकलनम्, ३१. अङ्कगणित का इतिहास, ३२. समीकरणमीमांसा इन ग्रन्थों की भी रचना की।

ज्योतिष के अतिरिक्त उन्होंने व्याकरण-संबंधी दो ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। इनमें एक संस्कृत भाषा से सम्बद्ध 'भाषा-बोधक' नामक ग्रन्थ है तथा दूसरा हिन्दी भाषा के व्याकरण से सम्बन्धित ग्रन्थ है।

आधुनिक-भारतीय-ज्योतिषियों की परम्परा के अति महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी जी का नाम सदैव अग्रणी रहेगा।

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(च) सुधाकर द्विवेदी के पिता का नाम ___________है।

(छ) सुधाकर जी ने ___________ से ज्योतिष-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की है।

(ज) _________ ने सुधाकर जी को सरस्वती भवन पुस्तकालय के अध्यक्ष-पद पर नियुक्त किया।

(झ) पिण्डप्रभाकर की रचना ________ में है।

(ञ) सुधाकर द्विवेदी की सूर्य-सिद्धान्त पर ________ टीका है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ सिद्धांत के उन्नति-काल के विद्वानों के नाम लिखिए।

____

____

____

____

४.७ सारांश

वटेश्वर और श्रीपति के समय से ही भारतीय ज्योतिषियों ने सौर सिद्धांत, आर्य सिद्धान्त या ब्राह्म सिद्धान्त के आधार पर अपने-अपने करण और सिद्धान्त ग्रन्थ बनाना आरम्भ कर दिया था। यह सिलसिला श्रीपति के बाद से लेकर कमलाकर तक बहुत तेज़ी से बढ़ा। इनमें मुख्य राजा भोज द्वारा रचित करण-ग्रन्थ राजमृगाङ्क, शतानन्द विरचित भास्वती, भास्कराचार्य द्वारा रचित करणकुतूहल, मकरन्द विरचित मकरन्द-सारिणी, गणेश द्वारा विरचित ग्रहलाघव, अनन्त कृत अनन्तसुधारस, मणिराम कृत ग्रहगणितचिन्तामणि इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त सिद्धान्त-ग्रंथों में ज्ञानराज द्वारा प्रणीत सिद्धान्तसुन्दर, मुनीश्वर कृत सिद्धान्तसार्वभौम, कमलाकर कृत सिद्धान्ततत्त्वविवेक आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इस कालखण्ड में मल्लारि, विश्वनाथ और नृसिंह जैसे प्रसिद्ध टीकाकार भी हुए हैं। इस प्रकार यह काल-खण्ड निश्चय ही भारतीय ज्योतिष का विशेषकर सिद्धान्त-ज्योतिष का अत्युन्नत काल कहा जाना चाहिए।

कमलाकर तैत्तिरीयशाखाध्यायी भारद्वाज-गोत्रीय महाराष्ट्रियन ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। कमलाकर के पिता का नाम नृसिंह और पितामह का नाम कृष्ण था। कमलाकर ने शक १५८० (खनागपञ्चेन्दु) में सिद्धान्ततत्त्वविवेक ग्रन्थ का निर्माण सूर्यसिद्धान्त के आधार पर किया। इस ग्रन्थ में कमलाकर ने ग्रहों के भगणादि मान सूर्यसिद्धान्त से लिए हैं। इस ग्रन्थ में कुल १३ अधिकार हैं। इन १३ अधिकारों में भिन्न-भिन्न छन्दों में ३०२४ पद्य हैं। ग्रन्थ में तुरीय-यन्त्र से सविस्तार वेध करने की प्रक्रिया वर्णित की गयी है। ग्रन्थ में त्रिप्रश्नाधिकार और ग्रहणाधिकार में नवीन विचारों का समावेश किया गया है।

बापूदेव शास्त्री का जन्म महाराष्ट्र प्रांत के अहमदनगर जिले के गोदा नदी के किनारे टोके नामक गांव में शक १७४३ (१ नवम्बर १८२१ ई.) में हुआ। इन्होंने ढुण्ढिराज मिश्र जी से

बीजगणित, लीलावती और सिद्धान्तशिरोमणि का अध्ययन किया। अध्ययन के पश्चात् यह काशी में संस्कृत कालेज में गणित विषय के प्रधान अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। शक १८०९ (१८८७ ई.) में तत्कालीन अंग्रेज़ी शासन ने बापूदेव शास्त्री जी को महामहोपाध्याय की पदवी से सम्मानित किया। इन्होंने ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध पर अपनी लेखनी भी चलाई। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी तीनों ही भाषाओं में २१ ग्रन्थ रचे हैं, जिनमें कुछ प्रकाशित हो पाए तो कुछ अप्रकाशित ही रह गए। बापूदेव शास्त्री भारतीय ज्योतिष में काल-क्रमानुसार परिवर्तन और संशोधन के बड़े हिमायती थे। वह पंचांगों के निर्माण में भी दृक्-सिद्ध ग्रह के साधन के पक्ष में थे। उन्होंने दृक्-सिद्ध पंचांगों का नाटिकल अल्मनाक (नाविक पंचांग) के आधार पर निर्माण भी किया।

पण्डित सुधाकर द्विवेदी का जन्म काशी के खजूरी में शक १७८२ में चैत्र शुक्ल चतुर्थी को हुआ था। सुधाकर जी ने पण्डित देवकृष्ण मिश्र से ज्योतिष-शास्त्र की और पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री जी से व्याकरण-शास्त्र के शिक्षा ग्रहण की। अध्ययन के उपरान्त उनकी नियुक्ति ज्योतिष-अध्यापक के रूप में दरभंगा स्थित संस्कृत विद्यालय में हुई। ३ वर्ष बाद क्वींस कालेज, वाराणसी में सरस्वती भवन पुस्तकालय के अध्यक्ष के पद पर तथा ६ वर्ष बाद शक १८११ में गणित और ज्योतिष के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। कालांतर में उनकी प्रतिभा और कर्तृत्व से प्रभावित होकर तत्कालीन आंग्ल-प्रशासन ने इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से भी विभूषित किया। गणित और ज्योतिष के प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही परम्पराओं पर आपकी समीक्षापरक सशक्त लेखनी समान रूप से चली है। इन्होंने ३४ ग्रंथों की रचना की है।

४.८ शब्दावली

१. सार्धाम्बरदस्र – अर्धेन सहित: अम्बरदस्र: = आधे अंश (३० कला) के साथ अम्बरदस्र (२०/३०)।

२. अम्बरदस्र – अम्बर (०) दस्र (२) ।

३. पलांशकै: - अक्षांशों के द्वारा ।

४. गोदावरीसौम्यविभागसंस्थं - गोदावरी नदी के उत्तर भाग पर ।

५. नृप - १६ ।

६. याम्यान्तराशा - दक्षिण दिशा ।

७. सार्धद्वितुल्यै: - ढाई २-१/२ (अंशों) के द्वारा ।

८. भारद्वाजकुलावतंस: - भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न ।

९. तज्ज: - उनका पुत्र ।

१०. सद्गोलविदां वरिष्ठः - सज्जन गोलशास्त्रियों में वरिष्ठ।

११. गणकार्यवन्द्यः - ज्योतिषियों में पूज्य।

१२. सांवत्सरार्यात् - बड़े ज्योतिषी से।

१३. प्रलब्धशास्त्रावबोधः - शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके।

१४. खनागपञ्चेन्दु - १५८०।

१५. सिद्धान्तमार्याभिमतं – आर्यभट्ट के सिद्धान्त के अनुसार।

१६. भागीरथीसौम्यतटोपकण्ठवाराणसीस्थः - गंगा के उत्तर तट पर वाराणसी पर स्थित।

१७. रचयाम्बभूव – रचना हुई।

४.९ बोध प्रश्नों के उत्तर –

प्र.१ (क) (√) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.२ (क) ब्राह्मसिद्धान्त।

(ख) भास्वती।

(ग) करणकुतूहल।

(घ) महादेव।

(ङ) गणेश दैवज्ञ।

प्र.३ (क) (√) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.४ (क) पण्डित कृपालुदत्त द्विवेदी।

(ख) पण्डित देवकृष्ण मिश्र।

(ग) डा. थीबो।

(घ) शक १८०७।

(ङ) सुधावार्षिणी।

४.९ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. झारखंडी शिवनाथ (१९९०) भारतीय ज्योतिष (मूल – शंकर बालकृष्ण दीक्षित), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।

२. प्रसाद गोरख (१९९०), भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

३. शर्मा पण्डित रामस्वरूप (१९६२), वटेश्वरसिद्धान्त, इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ अस्ट्रोनोमिकल एंड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली।

४.१० सहायक ग्रन्थ सूची –

१. शास्त्री नेमीचन्द्र (२०१४), भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

२. द्विवेदी सुधाकर (१८९२), गणक तरंगिणी।

४.११ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. श्रीपति के बाद का काल सिद्धान्त-ज्योतिष का उन्नति-काल क्यूं है?

२. सिद्धान्त-तत्व-विवेक पर प्रकाश डालिए।

३. भारतीय ज्योतिष के इतिहास में बापूदेव शास्त्री की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

४. पण्डित सुधाकर द्विवेदी के कर्तृत्व का निरूपण कीजिए।

इकाई - ५ नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, मुरलीधर ठाकुर, गंगाधर मिश्र

इकाई का निरूपण

५.१ प्रस्तावना
५.२ उद्देश्य
५.३ आधुनिक काल
५.४ नीलाम्बर झा
    ५.४.१ नीलाम्बर झा का परिचय और काल
    ५.४.२ नीलाम्बर झा का कर्तृत्व
५.४.२.१ गोलीय रेखागणित
    ५.४.३ नीलाम्बर झा का वैशिष्ट्य
५.५. सामन्त चन्द्रशेखर
    ५.५.१ सामन्त चन्द्रशेखर का परिचय
    ५.५.२ सामन्त चन्द्रशेखर का कर्तृत्व
    ५.५.३ सामन्त चन्द्रशेखर का वैशिष्ट्य
५.६ गंगाधर मिश्र
    ५.६.१ गंगाधर मिश्र का जीवन-परिचय
    ५.६.२. गंगाधर मिश्र का कर्तृत्व
५.७ सारांश
५.८ शब्दावली
५.९ बोध प्रश्नों के उत्तर
५.१० सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
५.११ सहायक ग्रन्थ सूची
५.१२ निबन्धात्मक प्रश्न

५.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! ज्योतिष-शास्त्र के एम.ए. (तृतीय सेमेस्टर) के तृतीय पत्र के द्वितीय खण्ड की पञ्चम इकाई में आपका स्वागत है। पिछली इकाई में हमने भारतीय ज्योतिष विशेषकर इसके सिद्धांत स्कंध के उन्नति-काल की चर्चा की। इसमें हमने कमलाकर भट्ट, बापूदेव (नृसिंह) शास्त्री और सुधाकर द्विवेदी के भारतीय ज्योतिष में अवदान की विस्तार से चर्चा की। पूर्व इकाई के अध्ययन से यह बात निकल कर आई कि पाश्चात्यों (अंग्रज़ों) के काल में अंग्रेज़ी भाषा के साथ-साथ पाश्चात्य-सिद्धांत-ज्योतिष और पाश्चात्य-गणित का स्वभावत: अधिक प्रचार भारत में हुआ। और इस प्रचार को निश्चय ही तत्कालीन अंग्रेज़-शासन ने भी बहुत सहायता की।

प्रस्तुत इकाई में हम इस बदले हुए तत्कालीन भारतीय-परिवेश में भारतीय-ज्योतिष-वांमय को नई दिशा देने वाले ज्योतिषियों की चर्चा करेंगे जिनमें नीलाम्बर झा, सामंत चंद्रशेखर एवं गंगाधर मिश्र प्रमुख हैं। तो आइए, इस इकाई की शुरुआत करते हैं।

५.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- भारतीय ज्योतिष के आधुनिक-काल का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे।
- ज्योतिष में नीलाम्बर झा के योगदान को विस्तारपूर्वक निरूपित कर सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- सामन्त चंद्रशेखर और उनके कर्तृत्व का प्रतिपादन कर सकने में कुशल हो सकेंगे।
- गंगाधर मिश्र के कर्तृत्व और भारतीय ज्योतिष में उनके महत्व को व्याख्यायित करने में निपुण हो सकेंगे।

५.३ आधुनिक काल

शालिवाहन शक के सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से भारतीय ज्योतिष का आधुनिक काल माना जा सकता है। इस काल में नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, वेंकटेश बापू केतकर बाल गंगाधर तिलक, दीनानाथ शास्त्री चुलेट, शंकर बालकृष्ण दीक्षित जैसे

अनेकों विद्वान् हुए। इनमें से अधिकतर विद्वान् अंग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य गणित इन दोनों से भली-भांति परिचित थे। ऐसे विद्वानों को अंग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य गणित के अध्ययन हेतु शासन ने पुरस्कार, उपाधि और आजीविका देकर अत्यधिक प्रोत्साहित भी किया। पिछली इकाई में हमने पढ़ा कि बापूदेव शास्त्री और सुधाकर द्विवेदी को महामहोपाध्याय की उपाधि भी मिली।

इस राजनैतिक-शैक्षिक परिवर्तन ने कुछ अच्छा और कुछ बुरा दोनों ही प्रकार का प्रभाव भारतीय-ज्योतिष-साहित्य पर डाला। विदेशी भाषा और साहित्य ने भारतीय विचारकों और विद्वानों को भी प्रभावित किया। फलत: भारतीय ज्योतिष में बड़ी-बड़ी पद्य-रचनाएं बनना कम हो गई। सिद्धान्त-ज्योतिष में वेध-प्रक्रिया को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। ग्रह-नक्षत्रादि के वेध में भारतीय विद्वानों की रुचि विशेष रूप से बढ़ी। पाश्चात्य-खगोलीय-सिद्धान्तों और आधुनिक गणित के समावेश ने इस रुचि को और बढ़ाया। भारतीय-ज्योतिष का खगोलीय पक्ष और अधिक प्रायोगिक हो गया । नक्षत्रों की स्थिति, विविध-अयनांश-वाद, सायन-निरयणवाद, विविध खगोलीय यन्त्रों की संरचना विधि के साथ-साथ ग्रह-स्पष्टीकरणार्थ च्युति—किरणवक्रीभवन प्रभृति नए संस्कार, नए-नए गणितीय नियम, अयन-संपात, ध्रुव-चलन और नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर वेदों, वैदिक साहित्य आदि के काल-निर्धारण इत्यादि इस काल में भारतीय-ज्योतिषीय-विद्वानों के अध्ययन के विषय बन गए। धारणाओं और विचारों के आधार पर इस काल में विद्वानों के दो स्पष्ट वर्ग बन गए थे। एक वर्ग ज्योतिष के ज्ञान और प्राचीनता में भारतीय-प्रधानता को स्वीकार करता था, जिनमें बाल गंगाधर तिलक, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, दीनानाथ शास्त्री चुलेट मुख्य थे। तो दूसरा वर्ग ज्योतिष के ज्ञान और प्राचीनता में पाश्चात्य विद्वानों के मतों का पक्षधर था, जिनमें भारतीय ज्योतिष के ज्ञान और प्राचीनता को कम करके आंका गया या यूं कहें की पूर्व वर्ग की अपेक्षा अर्वाचीन माना गया। ये मत कोलब्रुक, विन्टरनित्ज, बेंटली, बर्जेस जैसे पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा स्थापित और बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी जैसे विद्वानों द्वारा समर्थित हुआ।

इस प्रकार देखा जाए तो यह काल-खण्ड निश्चय ही भारतीय ज्योतिष का आधुनिक-काल कहा जाना चाहिए। इस कालखंड में भारतीय-ज्योतिष, विशेषकर सिद्धान्त-ज्योतिष में एक ठहराव सा दिखता है। जो भी नए संस्कार ग्रह-स्पष्टीकरण में प्रयोग में आए या फिर नई विधा गणित में आई वह पश्चिम (केपलर आदि) से पूर्णतया प्रभावित थी। दूसरे शब्दों में कहें तो शुद्ध (या मौलिक) भारतीय-चिंतन का शनैः-शनैः अभाव होने लगा। जो प्राचीन-भारतीय-परम्परा के संवाहक थे वो या तो प्रकाश में नहीं आए या तत्कालीन शासन से समर्थित या प्रोत्साहित नहीं हुए। एक दूसरी बात जो निकल के आई इस काल में वह थी फलित-ज्योतिष के प्रति कम-श्रद्धा का भाव ('आधुनिकास्तु

फलमात्रैकवेदिन:' - सुधाकर द्विवेदी), जो शायद समय का प्रभाव था। जहां तक प्रश्न समय के बदलाव का है उसके कई कारक थे - १. अंग्रेजों का राज, २. पाश्चात्य-सभ्यता के प्रभाव से आध्यात्मिकता और सनातन-पूजा-पद्धति के प्रति शनै:-शनै: उदासीनता का भाव, ३. छोटे-छोटे रजवाड़ों का घटता राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रभाव, ४. छोटी रियासतों के घटते प्रभाव के कारण ज्योतिषियों के राज्याश्रित होने में कमी, ५. राज्याश्रयाभाव में धनार्जन हेतु पाखण्ड की अतिशयिता ५. अध्ययन और निज-परम्परा के संरक्षण की अपेक्षा स्वतन्त्रता हेतु संघर्ष में युवा-वैचारिक-शक्ति की प्रवृत्ति इत्यादि। इन सब कारणों ने प्राय: सभी भारतीय-शास्त्रों में शोध की प्रवृत्ति को धीरे-धीरे करके समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। फ़िर फलित ज्योतिष की तो बात ही क्या ! इस शास्त्र में शोध के लिए अध्ययन, अभ्यास और साधना की त्रिपुटी परमावश्यक है जो समयापेक्ष्य और अर्थापेक्ष्य है जिसका इस काल में अभाव रहा। विपरीत परिस्थितियों को भांपकर योग्य ज्योतिषियों ने इसे अनधिकारियों को देना उचित नहीं समझा। यही कारण है की फलित-ज्योतिष में कुछ संकलनात्मक ग्रंथों को छोड़कर मौलिक कार्य नहीं के बराबर हुआ।

जब फलित पर कार्य नहीं हुआ तो संहिता पर शोधपरक-कार्य तो दूर की ही कौड़ी थी। केवल काल के सन्दर्भ में ही नहीं अपितु विचारों और पाश्चात्य-गणितीय-खगोलीय-सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में भी यह काल 'आधुनिक काल' कहा जा सकता है। इस आधुनिक काल में चार प्रकार के कार्य मुख्य-रूप से हुए – १. पाश्चात्य खगोलीय सिद्धांतों का भारतीयकरण, २. पाश्चात्य-गणित का भाषांतरण ३. मूल ग्रंथों का भाष्यकरण ४. वैदिकसाहित्य के काल-निर्धारण-से सम्बन्धित मौलिक-निबन्धात्मक ग्रंथों का प्रणयन।

इन कार्यों को आधार बनाकर, इस इकाई में भारतीय ज्योतिष के आधुनिक-काल के तीन प्रमुख विद्वानों और उनके कृत्यों की चर्चा करेंगे जिन्होंने अपनी अतुल्य मेधा और प्रतिभा से भारतीय ज्योतिष को समृद्ध बनाया। काल-क्रमानुसार ये क्रमश: नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर और गंगाधर मिश्र हैं। ये तीनों ही प्रकांड गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। आइए इन महान विभूतियों की विस्तार से चर्चा इस इकाई में करें।

५.४ नीलाम्बर झा -

प्रिय अध्येता, सर्वप्रथम चर्चा नीलाम्बर झा की करते हैं। यद्यपि भारतीय-ज्योतिष में समय-समय पर विद्वानों ने गणितीय-प्रक्रिया में परिष्कार करते हुए इसको विकसित किया। आर्यभट्ट से लेकर

कमलाकर और सुधाकर तक गणितज्ञ ज्योतिषियों ने भारतीय-ज्योतिष की परम्परा को बहुत ही सुदृढ़ता प्रदान की। इस प्रकार परम्परागत ज्योतिष-गणित के विषयों का आधुनिक-गणित से समन्वयन करके व्याख्यायित करने वाले विद्वानों की जो नई परम्परा बापूदेव शास्त्री और सुधाकर द्विवेदी जी ने डाली उस परम्परा के महत्वपूर्ण कड़ियों में पण्डित नीलाम्बर झा का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

५.४.१ नीलाम्बर झा का परिचय और काल –

नीलाम्बर झा का कुल प्रसिद्ध ज्योतिषियों का वंश था। इनका जन्म गङ्गा और गण्डकी के सङ्गम से २ कोस पर पाटलिपुत्र (पटना) नगर में शक १७४५ (१८२३ ई.) में हुआ। ये मैथिल ब्राहमण थे। स्वयं नीलाम्बर कहते हैं –

नीलाम्बरो मैथिलभूसुरोऽहं...............................।

(गोलीयरेखागणित, श्लोक २)

अर्थात् मैं नीलाम्बर मैथिल ब्राह्मण (भूसुर) हूं।

इनके पिता का नाम श्री शम्भुनाथ झा था। इनके पिता का उनके जीवन पर बहुत प्रभाव था। इनके अग्रज भाई पण्डित जीवनाथ झा थे, जिन्होंने फलित ज्योतिष के ग्रन्थ 'भावकुतूहल' की रचना की। नीलाम्बर झा ने सर्वप्रथम अपने भाई जीवनाथ जी से ज्योतिष की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। कालान्तर में वह काशी आए और यहाँ पर काशी-संस्कृत-पाठशाला में अध्ययन करते हुए उन्होंने अनेक विद्वानों के सान्निध्य में ज्योतिष का अध्ययन किया। काशी में ये महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी से बहुत प्रभावित हुए और उनकी ही प्रेरणा से आधुनिक गणित का अध्ययन किया। आधुनिक गणित के अध्ययन के बाद इन्होंने सिद्धान्तज्योतिष के खगोलीय विषयों को इस नई गणितीय पद्धति से निरूपित करने का निर्णय लिया। अपनी विशिष्ट मेधा और प्रतिभा के द्वारा नीलाम्बर जी ने आधुनिक-खगोल-विज्ञान का भारतीय-सिद्धांत-ज्योतिषीय सूत्रों से समन्वयन स्थापित किया। इस प्रकार वह पारंपरिक ज्योतिषीय परिवार में उत्पन्न ऐसे पारम्परिक पण्डित थे जिन्होंने पाश्चात्य गणित की सहायता से भारतीय खगोलीय सिद्धांत के विषयों को स्पष्ट किया। ऐसा प्रतीत होता है कि नीलाम्बर झा श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। क्योंकि इनके ग्रंथों गोलीय-रेखागणित और चापीय-त्रिकोणमिति में भगवान् श्रीकृष्ण की ही आराधना की गई है। ये अलवर के राजा शिव के प्रधान ज्योतिषी थे। काशी में शक १८०५ (१८८३ ई.) में इनका देहावसान हुआ।

५.४.२. नीलाम्बर झा का कर्तृत्व –

इनका एक ग्रन्थ गोलप्रकाश है। इसके पांच भाग या अध्याय हैं। ये हैं – १. ज्योत्पत्ति, २. त्रिकोणमिति, ३. गोलीय रेखागणित, ४. चापीय त्रिकोणमिति और ५. प्रश्न-सिद्धान्त। इनमें गोलीय रेखागणित और चापीय त्रिकोणमिति तो पारम्परिक-अध्ययन-शाखा में शास्त्री (बी.ए. समकक्ष) तृतीय वर्ष के पाठ्यक्रम में सिद्धान्त-ज्योतिष विषय में पढ़ाई भी जाती हैं। इसके अतिरिक्त शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी के अनुसार इन्होंने भास्करीय ग्रंथों के कुछ भागों की भी रचना की है। तो आइए, इनके ग्रन्थ गोलीय रेखागणित की कुछ चर्चा करते हैं।

५.४.२.१ गोलीय रेखागणित -

अंग्रेज़ी का ज्ञान न होने के कारण या आंग्ल माध्यम से अध्ययन न करने वाले उच्च-गणित या खगोलीय-गणित का अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए पाश्चात्य-गणित के नियमों से संवलित इस ग्रन्थ की रचना नीलाम्बर जी ने की है -

.......................सिद्धान्तसम्भ्रान्तनिरस्तशङ्कम्।

गोलस्वरूपावगमप्रकारं गोलीयरेखागणितं प्रवक्ष्ये।।

(गोलीयरेखागणित, श्लोक २)

अर्थात् सिद्धान्त-ज्योतिष की क्लिष्टता के कारण निरन्तर भ्रम में पड़े (सम्भ्रान्त) लोगों की शंका को निरस्त कर देने वाले, गोल (खगोल) के स्वरूप का बोध कराने वाले प्रकार को (गोलस्वरूपावगमप्रकारं) 'गोलीयरेखागणित' को कहता हूं।

इसमें पांच अध्याय हैं जो क्रमश: इस प्रकार हैं – १. ज्योत्पत्ति, २. त्रिकोणमितिसिद्धान्त, ३. चापीयरेखागणितसिद्धान्त, ४. चापीयत्रिकोणमितिसिद्धान्त, ५. प्रश्न-विषय। इस ग्रन्थ में १८ क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में विविध अनुमानों की भी विशद चर्चा है। ग्रन्थ के आरम्भ में ११ परिभाषाएं दी गयी हैं। शक १७९३ में काशी में महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री ने इसे प्रकाशित कराया। तत्पश्चात् श्री चन्द्रशेखर झा ने उपपत्ति एवं व्याख्या के साथ इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया। इसके अनन्तर गोलीयरेखागणित की 'विकाशिका' टीका के साथ श्री अनूप मिश्रा ने प्रकाशित कराया। १९५४ ई. में काशी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय (वर्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) से पं. मीठालाल ओझा जी ने 'रूषा' व्याख्या सहित नवीन क्षेत्रों के साथ प्रकाशित किया था।

नीलाम्बराचार्यविनिर्मितेऽस्मिन् गोलीयरेखागणितेऽत्र काश्याम्।

आचार्यपादानभिवन्द्य सम्यग्व्याख्यां रुषाख्यामहमातनोमि।।

आचार्य नीलाम्बर द्वारा काशी में विरचित गोलीय रेखागणित की रूषा नामक व्याख्या को आचार्य जनों का अभिवादन कर मैं विस्तारित कर रहा हूं।

५.४.३ गोलीय रेखागणित का वैशिष्ट्य –

नीलाम्बर ने तत्कालीन भारतीय-खगोलीय-ज्योतिषीय-समाज में गोलीय रेखागणित

जैसे क्लिष्ट पाश्चात्य-गणितीय-सूत्रों से युक्त ग्रन्थ की रचना की जो अपने आप में नीलाम्बर की अद्भुत गणितीय प्रतिभा का परिचायक है । इसमें गोलीय रेखागणित के विविध क्षेत्रों की परिभाषा, रचना और उपपत्ति का प्रदर्शन बड़े ही सरल शब्दों में उन्होंने किया है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से न केवल गोलीय रेखागणित के सूत्रों और सिद्धांतों का ज्ञान होता है अपितु भारतीय-खगोलीय-ज्योतिष के विषय भी रचना की दृष्टि से स्पष्ट होते हैं । गोलीय रेखागणित में निरूपित सभी क्षेत्र खगोलीय वृत्तों से निर्मित होते हैं । उदाहरण के रूप में ध्रुव से लगाकर ग्रह से होकर जाने वाला एक गोलीय वृत्त है जिसे 'ग्रहगत-ध्रुवप्रोतवृत्त' कहते हैं । एक दूसरा वृत्त है क्रांतिवृत्त जिसमें सूर्य (या नवीन मतानुसार पृथ्वी) भ्रमण करती है । इसका ही दूसरा नाम राशिवृत्त भी है । एक तीसरा वृत्त है उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव से ९० अंश की दूरी पर बनाता है । इसे नाडीवृत्त, कालवृत्त या विषुववृत्त भी कहते हैं । चूंकि इन तीनों वृत्तों में से क्रान्तिवृत्त और नाडीवृत्त इनका परस्पर खगोल पर दो बिन्दुओं पर सम्पात या कटान होने के कारण इन बिन्दुओं पर जो कोण बनता है उसे गोल-संधि-कोण (या क्रान्ति कोण) कहते हैं । इसके अतिरिक्त ग्रहगत-ध्रुवप्रोतवृत्त, क्रान्तिवृत्त और नाडीवृत्त इन दोनों से होकर गुज़रता है अत: इस वृत्त के द्वारा क्रमश: क्रान्ति और नाडी इन दोनों के साथ सम्पात होने के कारण दो और कोण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार चूंकि इन तीनों वृत्तों से तीन कोण उत्पन्न होते हैं अत: इन तीनों वृत्तों के द्वारा एक गोलीय त्रिभुजगत क्षेत्र निर्मित होता है । इस प्रकार तीन वृत्त-चापों से निर्मित गोलीय-त्रिभुज, रैखिक त्रिभुज से गणितीय-गुणों में भी भिन्न होता है । जैसे रैखिक त्रिभुज में कोणों का योग १८० अंश के तुल्य होता है किन्तु गोलीय-त्रिभुज में अकेले एक चाप-भुजा का मान ही १८० अंश के लगभग हो सकता है । ऐसे अनेकों खगोलीय क्षेत्रों की चर्चा इस ग्रन्थ में की गयी है । चूंकि इन क्षेत्रों का निरूपण खगोलीय वृत्तों के कोणों, चापों और ज्यादिकों के द्वारा होता है अत: इस ग्रन्थ के अध्ययन से गोल

(खगोल) के साथ-साथ रेखागणित, त्रिकोणमिति, चापीय-त्रिकोणमिति और गोलीय रेखागणित के भी सूक्ष्म विषयों का ज्ञान हो जाता है।
जैसा कि पूर्व में मैंने कहा कि इसके अतिरिक्त गोलप्रकाशान्तर्गत चापीय त्रिकोणमिति ग्रन्थ भी वर्तमान में उपलब्ध है।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(ऩ) नीलाम्बर झा के भाई का नाम जीवनाथ था। ()
(प) नीलाम्बर झा का जन्म १८२६ ई. में हुआ। ()
(फ) नीलाम्बर के पिता का नाम श्री शम्भुनाथ झा था। ()
(ब) नीलाम्बर काशी के राजा के प्रधान ज्योतिषी थे ()
(भ) गोलप्रकाश की 'विकाशिका' टीका का प्रकाशन अनूप मिश्रा ने कराया। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ नीलाम्बर झा जी के ग्रन्थ गोलीय रेखागणित का परिचय दीजिए।

____

____

____

____

५.५ सामन्त चन्द्रशेखर –

५.५.१ सामन्त चन्द्रशेखर का परिचय –

श्री सामन्त चन्द्रशेखर का जन्म ओडिशा प्रदेश के कटक से ५०-६० मील दूर, पुरी जिला के खण्डपारा गाँव में श्यामबन्धु सिंह के घर पर शक १७५७ (११.१.१९३६ ई.) में पौष कृष्ण सप्तमी, मंगलवार को हुआ। इनका परिवार बघेलवंशीय-राजपरिवार से सम्बंधित था। ये भरद्वाज-गोत्रीय थे।

इनके वृद्ध-प्रपितामह (अर्थात् पितामह के पितामह) श्री वैरागी सिंह को पुरी के राजा ने मर्द्दराज तथा भ्रमरवर की उपाधि दी थी। वैरागी सिंह के पुत्र तथा चन्द्रशेखर के प्रपितामह का नाम नीलाद्रि सिंह था। उनके पुत्र तथा चन्द्रशेखर के पितामह का नाम नृसिंह तथा नृसिंह के पुत्र श्यामबन्धु सिंह थे। यद्यपि उनका जन्म सामन्त-परिवार में हुआ था लेकिन अपने अति-स्वाभिमानी प्रकृति के कारण उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया और साधारण जीवन-यापन किया। २२ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह अंगुल-राजकन्या सीता जी से हुआ। उनके ५ पुत्र और ६ कन्याएं थीं। ज्योतिषीय-गणना के आधार पर उनके द्वारा पूर्व में साधित समयानुसार ही उनका देहावसान १९०४ ई. में हुआ।

श्री चन्द्रशेखर ने आधुनिक विश्वविद्यालयीय शिक्षा-पद्धति से नहीं पढ़े थे। उन्होंने पण्डित मधुसूदन महापात्र से संस्कृत शिक्षा ग्रहण की तथा राज-ज्योतिषी पण्डित आनन्द मिश्र खड्गराय (जिन्हें राज दरबार से 'खड़ंगा' यह उपाधि प्राप्त थी) से गणित ज्योतिष की शिक्षा ग्रहण की। ज्योतिष के प्रति इनकी विशेष रुचि थी। अपनी प्रखर मेधा के बल पर युवावस्था से ही उन्होंने ज्योतिष की पुस्तकों का संकलन, अध्ययन तथा वेध करना आरम्भ कर दिया था। स्वयं के द्वारा सतत वेध करके उन्होंने ग्रहों के साधन-पद्धति में कुछ नए संस्कार जोड़े जिसका उन्होंने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त-दर्पण में निरूपण किया। उनका संपूर्ण ग्रन्थ उनके सतत वेध का ही प्रतिफल है। यही कारण है की उन्हें इस ग्रन्थ की रचना में ३४ वर्ष लग गए। इस ग्रन्थ के आधार पर कालान्तर में कटक के अंग्रेज कमिश्नर की अनुशंसा से उन्हें 'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्रदान की गई।

५.५.२ सामन्त चन्द्रशेखरसिंह का कर्तृत्व –

सामंत चन्द्रशेखर की कृति के रूप में सिद्धान्त दर्पण का नाम उल्लेखनीय है। चंद्रशेखर ने १८५८ ईस्वी में इस ग्रन्थ का लेखन आरम्भ किया। ३४ वर्ष के परिश्रम के बाद यह शक १८१४ (१८९२ ई.) मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी को शनिवार के दिन पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ का प्रकाशन लेखन के ५ वर्ष बाद १८९७ ई. में कलकत्ता के ६४, कॉलेज स्ट्रीट के इण्डिअन डिपॉजिटरी से हुआ था। कटक के सरकारी महाविद्यालय (रेवेनशा कॉलेज) में गणित के प्राध्यापक श्री योगेश (जोगेश) चन्द्र राय ने इसकी विस्तृत अंग्रेजी भूमिका लिख कर इसका सम्पादन किया। ओडिशा के आठमल्लिक के तत्कालीन राजा श्री महेन्द्र देव ने इसकी प्रशंसा तथा सहायता की थी जिसके लिये ग्रन्थकर्त्ता श्री चन्द्रशेखर सिंह सामन्त ने उन्हें यह पुस्तक समर्पित की थी। लेखक को इस कार्य के लिये कटक के अंग्रेज कमिश्नर की अनुशंसा से महामहोपाध्याय की उपाधि मिली। इसमें वैदिक युग से आरम्भ कर कमलाकर भट्ट पर्यन्त सभी ज्योतिष ग्रन्थों के सारांश रूप में २५०० संस्कृत श्लोक हैं। कालांतर में

उत्कल विश्वविद्यालय ने इस ग्रन्थ की भाष्य हेतु पण्डित वीर हनुमान शास्त्री को ६००० रूपए प्रतिमास पर नियुक्त किया। किन्तु, उत्कल विश्वविद्यालय से पूर्व ही इसका प्रकाशन कटक के 'धर्मग्रन्थ-स्टोर' से हो गया। बाद में उत्कल विश्वविद्यालय से तथा श्री कान्हूचरण मिश्र की 'उत्कल-साहित्य-संस्था' द्वारा इसकी प्रतियां प्रकाशित हुईं। कालान्तर में १९६६ ई. में इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ ऐस्ट्रोनोमिकल ऐण्ड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली ने पण्डित रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित तथा वासना, विज्ञान, हिन्दी भाष्यों से समन्वित इस ग्रन्थ का ४ खण्डों में प्रकाशन किया।

इस ग्रन्थ में कुल २४ प्रकाश (अध्याय) हैं जो कि ५ अधिकारों में बंटा है। इसमें प्रथम 'मध्यमाधिकार' में ४ प्रकाश हैं, जो इस प्रकार हैं – १. कालवर्णन २. भगणादिवर्णन, ३. मध्यमग्रह तथा ४. ग्रहों के संस्कार तथा पदक। द्वितीय स्फुटाधिकार में २ प्रकाश क्रमशः ५. स्फुट ग्रह और ६. सूक्ष्म पंचांग हैं। तृतीय त्रिप्रश्नाधिकार में ९ प्रकाश क्रमशः ७. शंकुछाया-वर्णन ८. चन्द्रग्रहण-वर्णन, ९. सूर्यग्रहण-वर्णन, १०. परिलेख-वर्णन, ११. ग्रहयुति-वर्णन, १२. ग्रह-नक्षत्र-योग, १३. ग्रह-नक्षत्र-उदयास्त, १४. चन्द्रश्रृंगोन्नति-वर्णन और १५. महापात-वर्णन हैं। चतुर्थ गोलाधिकार में १६. प्रश्न-वर्णन, १७. भूगोलस्थिति-वर्णन, १८. भूगोल-वर्णन, १९. भगोल तथा खगोल वर्णन, २०. यन्त्र-वर्णन और २१. बाकी रहस्य हैं। पंचम कालाधिकार में ३ वर्णन क्रमशः २२. संवत्सर, २३. पुरुषोत्तम-स्तव और २४. उपसंहार हैं।

पूर्वार्द्धे कालमहर्गणभगणखग-ज्यादिविस्पष्टतेषु,
त्रिप्रश्नप्रग्रहोपग्रहास्तमिदुदयास्तेन्दु शृङ्गातिपातान्।
अन्त्ये भागेऽनुयोगोत्तरविविधमतव्यक्तिसृष्ट्यन्तगोल,
क्ष्मा-कक्षायन्त्रवर्षाऽच्युतनुतिकुतुकान्यत्र पश्यन्त सन्तः॥
(सिद्धान्त दर्पण, १/२०)

अर्थात् इस ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में कालपरिमाण, अहर्गण, भगण, ग्रह आनयन, ज्या, कोटिज्या आदि, स्पष्ट ग्रह, शर, त्रिप्रश्न, ग्रहण, ग्रहयुति, नक्षत्र युति, उदय और अस्त, चन्द्रशृङ्गोन्नति, और व्यतीपात हैं। उत्तरार्द्ध में प्रश्न, उत्तर, विविध मत चर्चा, सृष्टि और उसका लय, गोल, पृथ्वी, कक्षा, यन्त्र, देश-विदेश (वर्ष), जगन्नाथ-स्तुति, और कौतुक-पञ्जिका की आलोचना है।

५.५.३ सिद्धान्त-दर्पण का वैशिष्ट्य –

यह ग्रन्थ उनके आजीवन परिश्रम, वेध और प्रतिभा का परिणाम-स्वरूप है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य न केवल खगोलीय-सिद्धांतों का श्लोक-बद्ध निरूपण है अपितु सतत-वेध-प्रक्रिया के द्वारा तत्कालीन स्पष्ट-ग्रह आदि के साधना द्वारा उक्त सिद्धांतों की पुष्टि करना भी है। इस उद्देश्य-पूर्ण-

प्रतिज्ञा को संपूर्ण ग्रन्थ में प्रत्येक अध्याय के अंत में ग्रंथकार १. बालबोध २. गणिताक्षिसिद्धि ऐसा कहते हुए दुहराता भी है।

इस ग्रन्थ का महत्व या यूं कहें कि इसका वैशिष्ट्य यह है कि यह न केवल दृकसिद्ध ग्रह के साधन के लिए गणितीय पद्धति को निरूपित करता है अपितु सही गणना हेतु खगोलीय-भौतिकी के सिद्धान्तों पर भी विचार करता है। इन सिद्धांतों के आधार पर आवश्यक गणितीय संस्कारों का निरूपण भी चंद्रशेखर ने इस ग्रन्थ में किया है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर विविध-गतियों यथा अक्ष-विचलन इत्यादि के कारण वर्त्तमान गणित से साधित और दृक्सिद्ध ग्रहों में भविष्य में पड़ने वाले अन्तर की भी गणना चंद्रशेखर ने की जिसे 'बीज' नाम से जाना जाता है। इन बीजों का संस्कार गणितानीत ग्रह में करने पर वह प्रत्यक्षसिद्ध होता है। यद्यपि भास्कर आदि ने भी बीज-संस्कारों का वर्णन किया है किन्तु इसके सहेतुक-साधन के साथ-साथ इन संस्कारों से संस्कृत वेधोपलब्ध ग्रह-साधन सामन्त चन्द्रशेखर ने ही किया है।

इस ग्रन्थ में चन्द्रशेखर ने चन्द्रमा के स्पष्ट साधन हेतु 'तुंगान्तर संस्कार', 'पाक्षिक संस्कार',

'दिगंश संस्कार' का मौलिक निरूपण किया। सूर्य सिद्धांत के अयन-चलन के सिद्धान्त में थोड़ा सुधार करते हुए उन्होंने १ कल्प में अयन-भगण की संख्या भी ६ लाख की जगह ६,४०,१७० स्वीकार की। इन्होंने मंगल और शनि के परोच्च की भी कल्पना की जो कि मन्दोच्च के चारों ओर नियत गति से भ्रमण करता है। जगह-जगह पर सामन्त ने प्राच्य-ग्रंथों और वैदिक साहित्य को अपना आधार बनाया है और उनकी प्रतिष्ठा में पूर्णतया सन्नद्ध रहे। इनके महत्त्वपूर्ण योगदान को तत्कालीन आंग्ल-प्रशासन ने भी सादर नमन करते हुए इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि देकर से सम्मानित किया।

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(ट) सामन्त चन्द्रशेखर का जन्म ओडिशा के खण्डपारा में हुआ। ()
(ठ) चन्द्रशेखर के प्रपितामह का नाम नीलाद्रि सिंह था। ()
(ड) सिद्धान्त दर्पण ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में जगन्नाथ-स्तुति वर्णित है। ()
(ढ) चन्द्रशृङ्गोन्नति चर्चा सिद्धान्त दर्पण के उत्तरार्द्ध में । ()
(ण) चन्द्रशेखर ने चन्द्रमा के स्पष्ट साधन हेतु तुंगान्तर संस्कार का निरूपण किया ।()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ सामंत चंद्रशेखर की रचना का निरूपण करें।

____

____

____

____

४.६. गंगाधर मिश्र –

इनके विषय में परिचय स्वयं इन्हीं के द्वारा प्राप्त होता है। आपने सिद्धान्ततत्वविवेक की टीका में प्रत्येक अध्याय के अंत में अपने गांव और पिता से सम्बंधित गद्यात्मक पुष्पिका दे रखी है। इसके साथ ही मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार और ग्रन्थ के पूर्वार्ध की समाप्ति पर भी अपना श्लोकबद्ध परिचय विस्तृत रूप में दिया है। इस परिचय के अनुसार, गंगाधर मिश्र मैथिल ब्राहमण थे। ये उच्च कोटि के गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। इन्होंने सिद्धान्ततत्वविवेक की प्रसिद्ध टीका की। यद्यपि इनकी अन्य भी रचनाएं थीं किन्तु सिद्धान्ततत्वविवेक की टीका ने इसकी विद्वत्ता को सर्वत्र प्रतिष्ठित किया। तो आये मित्रों, पंडित गंगाधर मिश्र के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर कुछ चर्चा की जाए।

४.६.१ पण्डित गंगाधर मिश्र का जीवन-परिचय –

जैसा कि पूर्व में मैंने कहा कि गंगाधर मिश्र जी के बारे में ज्ञान प्राथमिक स्रोत से ही होता है। क्यूंकि उन्होंने स्वयं ही सिद्धान्ततत्वविवेक की स्वरचित टीका में बहुत्र अपना परिचय दिया है। उदाहरण के तौर पर त्रिप्रश्नाधिकार के अंत में वह लिखते हैं –

इति मिथिलादेशाङ्गभागलपुरमण्डलान्तर्गतचयनपुरग्रामनिवासिना विद्वद्वृन्दवन्द्यपदारविन्द-पण्डितप्रवरहंसराजशर्मणस्तनयेन मिश्रोपनामकेन श्रीगङ्गाधरशर्मणा कृते सिद्धान्ततत्वविवेकभाष्ये त्रिप्रश्नाधिकार: पूर्णत्वङ्गत:।

इसके अनुसार, गंगाधर मिश्र बिहार प्रान्त (मिथिलादेश) के अंतर्गत भागलपुर जिले के चयनपुर गाँव के रहने वाले थे। उनके पिता पंडित हंसराज मिश्र तत्कालीन विद्वानों में अत्यंत सम्मानित थे। त्रिप्रश्नाधिकार के अंत में अपना सविस्तार श्लोकबद्ध परिचय भी गंगाधर जी ने दिया है। इसमें ६ श्लोक हैं जिनमें उन्होंने अपनी शिक्षा, आजीविका और कर्तृत्व का बड़े ही सुन्दर पद्यों में वर्णन किया है।

संसारेऽस्मिन् विशाले सुविदितमिथिलादेशमध्ये प्रसिद्धम्,
गण्यैर्मान्यै: सुविज्ञै: 'चयनपुर'-मतिख्यातिमद्भिश्च युक्तम्।
तत्राम्बावंशवित्ताश्रयभृतिरमलज्ञानवान् विज्ञमान्यो,
दत्तान्त: शेखरादि: प्रचुरगुणयुत: संबभूव द्विजेन्द्र: ॥

अर्थात् इस संसार में विशाल और सर्वविदित मिथिला नामक नगरी में गणमान्य विद्वानों से सुशोभित चयनपुर नामक एक गाँव है। इस गांव में अम्बावंशीय राजाओं के द्वारा पोषित विद्वानों में मान्य 'शेखरदत्त' नामक विप्रवर रहते थे। ये (शेखरदत्त जी) गंगाधर के पितामह थे।

तत्पुत्रा: सच्चरित्रास्त्रय इह सुधयो धैर्यगाम्भीर्ययुक्ता:,
ज्येष्ठस्तत्रानवद्य-स्मृति-गणित-लसत्काव्यतर्कादिविज्ञ:।
स्वग्रामेऽध्यापयन् योऽनवरतममलादेशत: शिष्यसंघान्,
यावज्जीवं प्रसन्नो विमलपरयशा हंसराजोऽतिधन्य: ॥

अर्थात् इन शेखरदत्त के तीन बड़े ही चरित्रवान पुत्र थे। वे सभी विद्वान् और धैर्यशाली व गंभीर थे। उनमें हंसराज नामक सबसे बड़े पुत्र स्मृतियों, गणितशास्त्र, काव्यशास्त्र और तर्कविद्या के बड़े पंडित थे। ये अपने गांव में सतत शिष्यों को पढ़ाते रहते थे और यावज्जीवन संतोष-धन से परिपूर्ण, परम-प्रसन्न और बेदाग़ कीर्ति वाले रहे।

तत्सूनु: शैशवेऽहं हतनियतिरतो मातृशिक्षाप्रभावात्,
भ्रामं भ्रामं बहुत्राध्ययनविधिरतश्चान्ततो दैवयोगात्।
हाबीभौआड़ संज्ञ: स्वपुरनिवसताम् विज्ञशिष्यान्वितानां,
श्रीगेनालाल नाम्नां चरणकमलयोरन्तिकं प्राप्य तेभ्य: ॥

अर्थात् मैं गंगाधर उनका पुत्र, बचपन में ही अत्यन्त दुर्भाग्यवशात पिता के देहावसान के कारण माता से ही आरंभिक शिक्षा प्राप्त किया। मैंने कई घूम-घूम कर आरंभिक शिक्षा ग्रहण की। आखिरकार सौभाग्यवशात मुझे हाबीभौआड़ गांव में विद्वान् शिष्यों से युक्त गुरुदेव गेनालाल जी की शरण में ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला।

सर्वान् ग्रन्थानधीत्याधिगतमतिरथोत्तीर्णतीर्थ: परस्तात्,
काशीं मित्रानुरोधाच्छ्रुतिगुणवसुभूसंख्यशाके समेत्य।
भ्रातुस्साहाय्ययोगाज्जगति सुविदिते क्वीन्सकालेज नाम्न,
आचार्ये प्राप्य हैमं पदकमपि, तथोत्तीर्य काव्यस्य तीर्थम्॥

अर्थात् वहां गुरु जी के श्री चरणों में मैंने सभी शास्त्रों में शिक्षा प्राप्त की और कालांतर में उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए शक १८३४ में मित्रों के अनुरोध पर तथा भाई के सहयोग से काशी में जगत विख्यात क्वींस कालेज में प्रवेश लिया। यहां पर मैंने न केवल आचार्य परीक्षा में सर्वोच्च अंक लेकर स्वर्ण-पदक प्राप्त किया अपितु मैंने काव्यतीर्थ की परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

तस्मात् 'प्रतापगढ'-मण्डलशासकानां,
श्रीगूर्जरद्विजविनायकमेहतानां।
विद्यालये सकलशास्त्रविभागयुक्ते,
त्वध्यापनाय गणितस्य नियोजितस्तै:॥

अर्थात्, इसके बाद प्रतापगढ़ जिले के शासक गुजराती ब्राह्मण श्री विनायक मेहता के महाविद्यालय में जिसमें सभी शास्त्र पढ़ाए जाते थे में गणित के अध्यापक के रूप में नियुक्त हुआ।

४.६.२. गंगाधर मिश्र का कर्तृत्व –

परिचयात्मक पद्य-रचना के अन्तिम श्लोक में इन्होंने अपने कर्तृत्व का भी परिचय दिया है। इसमें इन्होने अपनी तीन कृतियों का उल्लेख किया है। ये तीनों ही भाष्य हैं, जिनमें २ तो सुधाकर जी के गणितीय ग्रंथों पर हैं तथा १ कमलाकर भट्ट के प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धान्त-तत्व-विवेक की टीका है। इससे इनके पूर्णतया गणितज्ञ और खगोलवेत्ता होने की पुष्टि होती है।

तत्रादौ रुचिरां सुधाकरवपु: श्रिङ्गोन्नतेर्व्याकृतिं,
तत्पश्चात् प्रतिभावबोधतिलकं गोलज्ञमोदप्रदम्।
एतत् 'तत्त्वविवेक'-भाष्यमधुना निर्माय विद्वत्पुर:,
सेवार्थं समुपस्थितोऽस्मि लघुधीर्गङ्गाधरो मैथिल:॥

अर्थात् अपने अध्यापन काल के दौरान ही मैंने सबसे पहले महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी

जी के ग्रंथों पर टीकाएं लिखीं। इनमें सर्वप्रथम उनके ग्रन्थ 'वास्तवचन्द्रश्रृंगोन्नति' पर मैंने 'रुचिरा' भाष्य लिखी। इसके बाद उनके दूसरे ग्रन्थ 'प्रतिभाबोधक' पर 'तिलक' नामक टीका लिखी। इसके बाद गोलविदों की प्रसन्नता हेतु मैं अल्पमति गंगाधर मिश्र यह तत्वविवेक-भाष्य लिख कर विद्वज्जनों की सेवा में उपस्थित हूं।

इस तत्वविवेक-भाष्य का महत्त्व इसी बात से समझ लेना चाहिए कि यह एक मात्र विस्तृत, व्यवस्थित और संस्कृत भाषा में निबद्ध टीका है। इसमें आचार्य की गणितीय प्रतिभा के पग-पग पर दर्शन होते हैं। सिद्धान्ततत्त्वविवेक में श्लोक बड़े-बड़े छंदों में विरचित हैं जिनकी स्पष्ट व्याख्या बिना गंगाधर जी के भाष्य संभव ही नहीं है।

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

(ट) गंगाधर मिश्र ने ___________की प्रसिद्ध टीका की।
(ठ) गंगाधर मिश्र ने ___________ से ज्योतिष-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की है।
(ड) _________ ने गंगाधर मिश्र को अध्यापक नियुक्त किया।
(ढ) गंगाधर मिश्र ने प्रतिभाबोधक पर ________ नामक टीका लिखी है।
(ण) गंगाधर मिश्र के पिता का नाम ________ था।

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ गंगाधर मिश्र के कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

५.७ सारांश

भारतीय ज्योतिष का आधुनिक काल शालिवाहन शक के सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना जा सकता है। इस काल में नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, वेंकटेश बापू केतकर बाल गंगाधर तिलक, दीनानाथ शास्त्री चुलेट, शंकर बालकृष्ण दीक्षित जैसे अनेकों विद्वान् हुए। इनमें से अधिकतर विद्वान् अंग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य गणित इन दोनों से भली-भांति परिचित थे। इस काल में नीलाम्बर झा, सामन्तचन्द्रशेखर, बापूदेव शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, वेंकटेश बापू केतकर बाल गंगाधर सिद्धान्त-ज्योतिष में वेध-प्रक्रिया को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। जिससे भारतीय-ज्योतिष का खगोलीय पक्ष और अधिक प्रायोगिक हो गया । नक्षत्रों की स्थिति, सायन-निरयणवाद, विविध खगोलीय यन्त्रों की संरचना विधि के साथ-साथ ग्रह-स्पष्टीकरणार्थ च्युति—किरणवक्रीभवन प्रभृति नए संस्कार, और नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर वेदों, वैदिक साहित्य आदि के काल-निर्धारण इत्यादि इस काल में भारतीय-ज्योतिषीय-विद्वानों के अध्ययन के विषय बन गए।

नीलाम्बर झा का पटना में शक १७४५ में हुआ। इनके पिता का नाम श्री शम्भुनाथ झा और अग्रज भाई का नाम पण्डित जीवनाथ झा था। नीलाम्बर झा ने सर्वप्रथम अपने भाई जीवनाथ जी से ज्योतिष की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। पं. सुधाकर द्विवेदी से प्रभावित होकर इन्होंने सिद्धान्तज्योतिष के खगोलीय विषयों को इस नई गणितीय पद्धति से निरूपित करने का निर्णय लिया। वह पारंपरिक ज्योतिषीय परिवार में उत्पन्न ऐसे पारम्परिक पण्डित थे जिन्होंने पाश्चात्य गणित की सहायता से भारतीय खगोलीय सिद्धांत के विषयों को स्पष्ट किया।

श्री सामन्त चन्द्रशेखर का जन्म ओडिशा के खण्डपारा गाँव में श्यामबन्धु सिंह के घर पर शक १७५७ में पौष कृष्ण सप्तमी, मंगलवार को हुआ। यद्यपि उनका जन्म सामन्त-परिवार में हुआ था लेकिन अपने अति-स्वाभिमानी प्रकृति के कारण उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया और साधारण जीवन-यापन किया। चन्द्रशेखर ने आधुनिक विश्वविद्यालयीय शिक्षा-पद्धति से अध्ययन नहीं किया था । स्वयं के द्वारा सतत वेध करके उन्होंने ग्रहों के साधन-पद्धति में कुछ नए संस्कार जोड़े जिसका उन्होंने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त-दर्पण में निरूपण किया। चंद्रशेखर ने १८५८ ईस्वी में इस ग्रन्थ का लेखन आरम्भ किया। ३४ वर्ष के परिश्रम के बाद यह शक १८१४ में इसे पूर्ण किया। इसमें वैदिक युग से आरम्भ कर कमलाकर भट्ट पर्यन्त सभी ज्योतिष ग्रन्थों के सारांश रूप में २५०० संस्कृत श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के आधार पर कालान्तर में कटक के अंग्रेज कमिश्नर की अनुशंसा से उन्हें

'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्रदान की गई। यह ग्रन्थ उनके आजीवन परिश्रम, वेध और प्रतिभा का परिणाम-स्वरूप है। इसका वैशिष्ट्य यह है कि यह न केवल दृकसिद्ध ग्रह के साधन के लिए गणितीय पद्धति को निरूपित करता है अपितु सही गणना हेतु खगोलीय-भौतिकी के सिद्धान्तों पर भी विचार करता है। इन सिद्धांतों के आधार पर आवश्यक गणितीय संस्कारों का निरूपण भी चंद्रशेखर ने इस ग्रन्थ में किया है।

गंगाधर मिश्र बिहार के भागलपुर जिले के चयनपुर गाँव के रहने वाले थे । शेखरदत्त जी गंगाधर के पितामह थे। गंगाधर के पिता हंसराज, शेखरदत्त जी के सबसे बड़े पुत्र थे जो स्मृतियों, गणितशास्त्र, काव्यशास्त्र और तर्कविद्या के बड़े पंडित थे । गंगाधर ने बचपन में ही पिता के देहांत के कारण गुरुदेव गेनालाल जी से ज्योतिष सहित सभी शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की । काशी में क्वींस कालेज से आचार्य और काव्यतीर्थ की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। इसके बाद प्रतापगढ़ जिले के शासक गुजराती ब्राह्मण श्री विनायक मेहता के महाविद्यालय में गणित के अध्यापक के रूप में ये नियुक्त हुए। इन्होने तीन ग्रन्थ लिखे जिनमें २ तो सुधाकर जी के गणितीय ग्रंथों पर हैं तथा १ कमलाकर भट्ट के प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धान्त-तत्व-विवेक की टीका है।

५.८ शब्दावली

१. भूसुर = ब्राह्मण ।

२. सिद्धान्तसम्भ्रान्तनिरस्तशङ्कम् = सिद्धान्त-ज्योतिष की क्लिष्टता के कारण निरन्तर भ्रम में पड़े लोगों की शंका को निरस्त कर देने वाले (को) ।

३. त्रिप्रश्नप्रग्रहोपग्रहास्तमिदुदयास्तेन्दुशृङ्गातिपातान् = त्रिप्रश्न, ग्रहण, ग्रहयुति, नक्षत्र युति, उदय और अस्त, चन्द्रशृङ्गोन्नति, और व्यतीपात (को) ।

४. क्ष्मा-कक्षायन्त्रवर्षाऽच्युतनुतिकुतुकानि = पृथ्वी, कक्षा, यन्त्र, देश-विदेश (वर्ष) , जगन्नाथ स्तुति, और कौतुक पञ्जिका ।

५. विद्वद्वृन्दवन्द्य = विद्वानों के समूह में पूज्य ।

६. अम्बावंशवित्ताश्रयभृति: = अम्बावंशीय राजाओं के द्वारा पोषित ।

७. विज्ञमान्य: = विद्वानों द्वारा सम्मानित ।

८. प्रचुरगुणयुत: - अनेक गुणों से युक्त ।

९. संबभूव – हुए।

१०. स्मृति-गणित-लसत्काव्यतर्कादिविज्ञ: = स्मृतियों, गणितशास्त्र, काव्यशास्त्र और तर्कविद्या के बड़े पंडित।

११. तत्सूनु: = उनका पुत्र

१२. शैशवेऽहं = मैं गंगाधर, बचपन में।

१३. हतनियति: = दुर्भाग्यशाली।

१४. भ्रामं भ्रामं = घूम-घूम कर।

१५. चरणकमलयोरन्तिकं प्राप्य = गुरु के चरण-कमलों का सान्निध्य पाकर।

१६. श्रुतिगुणवसुभूसंख्यशाके = श्रुति (४) गुण (३) वसु (८) भू (१) १८३४ शक में।

१७. व्याकृतिं – व्याख्या (टीका) को।

५.९ बोध प्रश्नों के उत्तर –

प्र.१ (क) (√) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.२ (क) (√) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (×) (ङ) (√)

प्र.३ (क) सिद्धान्ततत्वविवेक।

(ख) पण्डित गेनालाल।

(ग) विनायक मेहता।

(घ) तिलक।

(ङ) हंसराज मिश्र।

५.९ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. झारखंडी शिवनाथ (१९९०) भारतीय ज्योतिष (मूल – शंकर बालकृष्ण दीक्षित), उत्तर प्रदेश

हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।

२. प्रसाद गोरख (१९९०), भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

३. मिश्र गंगाधर (), सिद्धान्ततत्वविवेक,

४. उपाध्याय अरुण कुमार (१९६२), सिद्धान्त दर्पण, इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ अस्ट्रोनोमिकल एंड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली।

५.१० सहायक ग्रन्थ सूची –

१. शास्त्री नेमीचन्द्र (२०१४), भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।

२. द्विवेदी सुधाकर (१८९२), प्रतिभाबोधकम।

५.११ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. आधुनिक-काल पर प्रकाश डालिए।

२. सिद्धान्त-दर्पण पर प्रकाश डालिए।

३. भारतीय ज्योतिष के इतिहास में नीलाम्बर झा की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

४. पण्डित गंगाधर मिश्र के कर्तृत्व का निरूपण कीजिए।